

राजपूतों के जौहर

लेखक
श्री तारानाथ रावल विशारद
जर्नलिस्ट

नवयुग-ग्रन्थ-कुटीर
बीकानेर

सूची

जौहर

जय जौहर-अधि[illegible]यना, महाशक्ति जगदंब ।
मुंड-मालिनी, शूलिनी, अट्टहास-प्रिय अंब ॥
जय जौहर-व्रत की व्रती, जय जौहर-व्रत-भाव ।
जय जय जय जौहर-धरा, जौहर-शाका [illegible] ॥
धन्य वही पुस्तक तथा, धन्य वही इतिहास ।
लिखा हुआ [illegible] पृष्ठ पर, जौहर-[illegible]-विलास ॥
कायर कायरता तजें, वीर रचें रण-रंग ।
सुनें सुनावें जो जहाँ, जौहर-जंग-प्रसंग ॥
जब जब अवसर आ पड़े, जौहरादि संघर्ष ।
करने को हो उठा खड़ा, प्यारा भारतवर्ष ॥

प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक जाति, प्रत्येक देश, और प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में समय समय पर ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जब उसे अपना सब कुछ छोड़कर मृत्यु को स्वीकार करने के लिए कमर कस लेना पड़ता है । यदि उस समय वह ऐसा नहीं करता, तो कुछ अंशों में उसकी धन-संपत्ति, ऐश्वर्य, वैभव और प्राणों की रक्षा अवश्य होजाती है, पर उसे अपने दुर्लभ गौरव से हाथ जरूर ही धोना पड़ता है । ऐसी प्रथा या अनुष्ठान जिसे करने से किसी व्यक्ति, जाति, देश या राष्ट्र के लौकिक ऐश्वर्य आदि का बाह्यरूप नष्ट हो जाता हो, किन्तु उसका यश चिरकाल तक स्थिर रह सकता हो, राजस्थान के इतिहास में 'जौहर' या 'जुहार' नाम से प्रसिद्ध है ।

यों तो संसार की अनेक जातियों ने, समय समय पर, अपने किसी भी प्रकार के अधिकारों की रक्षा के लिए, सहर्ष मृत्यु का आलिंगन किया है और उनका वह मृत्यु-वरण 'जौहर' कहा जा सकता है, पर 'जौहर' प्रथा का

भारतवर्ष के राजस्थान और राजपूत जाति से इतना गहरा संबंध है, जितना गिरिराज हिमालय और पुण्यतोया जाह्नवी का भारतवर्ष से । यदि मैं कहूं, कि राजपूतों ने ही 'जौहर' प्रथा का सर्वांश में अनुष्ठान और उद्यापन किया है, तो वीरता के निष्पक्ष पुजारी पाठक विश्वास रखें, मैं किसी भी अन्य वीर जाति के प्रति अन्याय नहीं कर रहा हूं। कर्नल टाड के राजस्थान के इतिहास की कई घटनाओं की सत्यता में कई इतिहासवेत्ताओं को मतभेद हो सकता है, पर उनके इस कथन से, कि 'राजस्थान में कोई छोटा सा भी राज्य ऐसा नहीं है कि जिसमें थर्मापोली जैसी रणभूमि न हो, और कदाचित् ही कोई ऐसा नगर मिले, जहां लियोनिडास जैसा वीर पुरुष पैदा न हुआ हो,' किसी को भी मत-भेद नहीं हो सकता।

भारत में इस जौहर-प्रथा को राजपूतों ने ही अपनाया है। जब राजपूतों को यह भली प्रकार निश्चय हो जाता था, कि अब आक्रमणकारियों पर विजय प्राप्त करना उनके लौकिक बल से बाहर की बात हो चुकी, और जब उन्हें यह निश्चय हो जाता था, कि अब अपने जातीय गौरव की रक्षा का मृत्यु के सिवाय अन्य उपाय नहीं रहा, तब वे अपनी माता, स्त्री, पुत्रों और कन्याओं को बड़ी बड़ी चिताओं पर भस्म करके, तथा मानवीय जीवनोपयोगी अन्य साधनों को नष्ट करके या अनुपयोगी करके, तथा स्वयं केशरिया बाना धारण करके दुर्ग का द्वार खोलकर, शत्रुओं पर सिंह-विक्रम से टूट पड़ते थे। फिर किसी विशेष उद्देश्य से ही अपने को कोई बचाता, नहीं तो मारना-मरना तो नियम और बचना अपवाद ही रहता था।

देश के एक विख्यात इतिहास लेखक द्वारा लिखित इतिहास में राजपूतों की जौहर प्रथा पर निम्नलिखित विचार प्रगट किये गये हैं:—

"बड़ी शूर-वीरता से आगे राजपूतों ने अरबी सेना से युद्ध किया। उसी समय से हमें राजपूतों की असाधारण सामाजिक क्रिया-विधि पर शोक

प्रकट करने का अवसर मिलता है, क्योंकि इस से आर्यों की पवित्रता सर्वदा के लिए लुप्त हो गई।

राजपूतों के अन्दर यह विचार बड़ी मज़बूती से जग गया था, कि रण-भूमि में मर जाना ही राजपूती कर्तव्य है। इसी युद्ध में जब इस्लामी सेना ने एक दुर्ग पर आक्रमण किया तो राजपूत मरने के लिए तैयार होगये। उन्होंने एक बड़ी भारी चिता तैयार करली, जिसमें पहिले स्त्रियां और बालक भस्मीभूत हो गये, बाद को पुरुषों ने स्नान करके और एक दूसरे से नमस्कार प्रणाम कह कर दुर्ग का द्वार खोला और आक्रामकों पर जा पड़े। इस तरह से प्रत्येक मनुष्य कट कर मर गया।"

इस उद्धरण से तो यही प्रगट होता है, कि राजपूतों का जौहर करना एक मूर्खता थी।

जिस इतिहास में से मैं यह उद्धरण उद्धृत कर रहा हूं, उसके लेखक देश के एक राजनैतिक नेता हैं। उन्होंने देश के लिए अत्यतम बलिदान किया है, और वे राजपूती वीरता के कट्टर पुजारी हैं। किन्तु वे राजनीति को चौपड़ का नहीं बरन शतरंज का खेल समझते हैं। अतः यह स्वाभाविक ही था, कि वे राजपूतों की जौहर प्रथा पर उपरोक्त विचार प्रगट करते।

मैं स्वयं राजनीति को शतरंज का खेल मानता हूं। चौपड़ के खेल में विजय प्राप्त करना अत्यधिकांश में भाग्य पर अवलंबित होता है, जबकि शतरंज के खेल में विजय सर्वांश में बुद्धि का विषय है।

युद्ध प्रीति-भोज नहीं, किन्तु रुधिर रासलीला है। सैनिक जब युद्ध के लिए प्रयाण करते हैं, उस समय साधारण अवस्था में उनकी आशा विजयी होकर लौटने की जितनी होती है, उतनी ही जीवित लौटने की और मारे जाने की भी होती है। किन्तु जब विजयी होने की आशा तो रहे ही नहीं, और जीवित रहना पारतंत्र्य के अपमान से कुढ़ने का कारण हो, तथा मर-

मिटने से मरने वालों की कीर्त्ति रहने के साथ साथ भावी पीढ़ियों को उत्साह प्राप्त होकर सफलता की संभावना ही नहीं विश्वास हो, तो ऐसी अवस्था में जूझ मरना मूर्खता कदापि नहीं कहा जा सकता।

कर्म का फल उतना ही निश्चित और उतना ही स्थायी होता है जितनी एकता और सचाई से वह किया जाय, फिर उसका करने वाला उसको देखे या न देखे।

तात्कालिक विफलता के कारण ही जौहर की महत्ता को स्वीकार न करना, दरअसल एक निष्ठुर कार्य है। इतिहास को जरा गौर से पढ़िये, तो छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी सफलता की जड़ में विफल दिखने और कहे जाने वाले अनुपम बलिदानों की अनेक तहें मिलेंगी। अकबर की सफलता को भेदक दृष्टि से देखिये, उसकी जड़ में स्वयं अकबर की विफलताओं के साथ साथ हुमायूं और बाबर की विफलताएँ भी हैं या नहीं? तथा बाबर की भारतीय विफलताएं ही नहीं किंतु समरकंद और फरगाना तक की और राणा प्रताप की महान सफलता के मूल में क्या स्वयं राणाजी एवं उनके पूर्वजों की विफलताएं नहीं हैं? इतिहास बनाने वालों में और इतिहास लिखने वालों में आकाश-पाताल का अंतर है।

अगर भारत के मध्यकालीन इतिहास में से राजस्थान का इतिहास निकाल दिया जाय, और राजस्थान के इतिहास में से जौहर निकाल दिये जाएं तो फिर रह ही क्या जाय?

अब कुछ बातें इस पुस्तक के विषय में।

इस पुस्तक को 'नवयुग ग्रंथ कुटीर' प्रकाशित कर रहा है। उक्त 'नवयुग ग्रंथ कुटीर' के संचालक हैं, श्री शंभूदयालजी सक्सेना। सक्सेनाजी की मुझ पर, जब से वे बीकानेर में आये, तब से, कृपा रही है। सन १९३६ के प्रारंभ में सक्सेनाजी ने मुझे 'राजपूतों के जौहर' लिखने के लिए कहा।

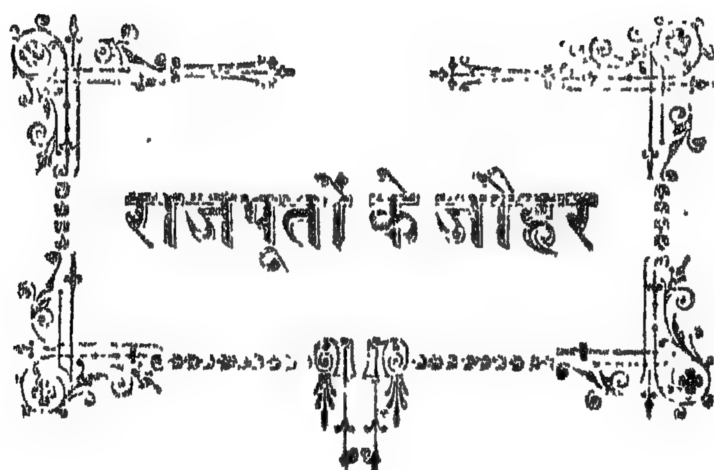
साधारणतया एक दो महीनों में यह पुस्तक लिखी जानी चाहिये थी। लगा डेढ साल से अधिक। पर करता क्या? जो एक ही समय में अनेक काम करने का भार अपने कंधों पर लाद लेते हैं, उनकी यही दशा होती है। उन दिनों की सक्सेनाजी की मीठी झिड़कियां मुझे आज भी याद आती हैं। अतः इसमें जो कुछ कमी है, उसके लिए मैं जिम्मेवार हूं, और जो कुछ पाठकों द्वारा प्रशंसित हो, उसका श्रेय सक्सेनाजी को है।

यदि प्रेस में नियामित रूप से इसकी छपाई होती रहती तो यह १६३८ के मार्च एप्रिल तक पाठकों की सेवा में पहुँच जाती। पर १६३६ के मध्य एप्रिल तक तो इसके फार्म ही अलग अलग पड़े हुए हैं। ऐसी ही दशा में यह लाहौर से बीकानेर लाई गई है। अब यह बीकानेर से प्रकाशित होगी। ये पंक्तियां आज मैं तीसरी बार याद कर करके लिख रहा हूं। लाहौर के प्रेस में यह जौहर विषयक प्रारंभिक वक्तव्य दो बार खोया गया था, इसीसे पाठक अनुमान लगालें, कि इस जौहर गाथा को कितनी प्रतिकूल परिस्थितियों से जौहर करना पड़ा होगा। जिसका परिणाम आप छपाई की अशुद्धियों के रूप में भी देखेंगे। यह इस पुस्तक के जन्म का मनोरंजक और दुखद पहलू भी है।

अगर इस पुस्तक को पढ़कर, पाठकों के मनमें उत्साह, वीरता, दृढ़ता, और कर्मण्यता के भावों का कुछ भी संचार हुआ, तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझकर, अपनी अन्य कृति लेकर पाठकों के सामने उपस्थित होने का प्रयत्न करूंगा।

अंतिम घड़ियों में जूझने वाली वीरता का अनन्य पुजारी

तारानाथ रावल



राजपूतों के जौहर

पहली ज्वाला

(क)

आज से दस-ग्यारह सौ साल पहिले की बात है। सिंध में कई राजाओं का राज्य था। उनकी अलग अलग राजधानियाँ थीं। उनके राज्य भी अलग अलग थे। उनमें सबसे बड़े राजा का नाम दाहिर था। दाहिर की राजधानी देवल थी। अलोर, रावर, नैरूं असकलंद, और ब्राह्मणाबाद भी राजधानियाँ थीं। उनके भी अलग अलग राजा थे।

आज देवल में बड़ी खुशी का दिन है। बच्चे से लगाकर वृद्ध तक, बालिका से लगाकर वृद्धा तक, सभी हर्ष से पूर्ण हो रहे हैं। धनी और कंगाल, छोटे और बड़े, मालिक और नौकर मंत्री और कारकुन, सब आनंदित मालूम पड़ते हैं। सड़कों की तो बात ही क्या गलियों में भी छिड़काव किया गया है। बड़ी बड़ी हवेलियों और अट्टालिकाओं की बात जाने दीजिये, छोटे छोटे कच्चे मकान और झोपड़ियाँ भी सजाई गई हैं। सब जगह वंदनवारें लगी हैं। ऐसा मालूम होता है मानों दुःख, शोक विषाद, दारिद्रय, रोग आदि मनुष्य-जाति के स्वाभाविक शत्रु अपना डेरा डण्डा उठाकर बहुत दूर नहीं तो कम से कम नगर

से बाहर तो चले ही गए हैं, और वे शायद आज से दो चार दिन बाद तक नगर में, परकोटे के किसी भी द्वार से, घुसने की हिम्मत न करेंगे।

निशा अंतिम सांस ले चुकी है। उषा का राज्य है। प्रातःकाल के आगमन की सूचना मिल चुकी है। ऐसे ही समय, राज-प्रासाद में अंतःपुर से सटे बाग़ में तीन स्त्रियाँ घूमती हुई दीखती हैं। उनमें से एक तो अधेड़ उम्र की है। रंग गोरा है। आँखें न तो बहुत बड़ी हैं और न छोटी; पर उनसे प्रभाव टपकता है। मनुष्य का चेहरा देखकर उसके स्वभाव और गुणों का पता लगानेवाला व्यक्ति उन आँखों को देखकर सहज ही कह सकता है, कि समय पड़ने पर ये आँखें अनेक व्यक्तियों को प्राणों की बाजी लगाने के लिए उभाड़ सकती हैं। उन लड़कियों के प्रति उसका व्यवहार बतलाता है, कि वह माता है और वे पुत्रियाँ हैं। उन लड़कियों का आपस का बर्ताव उनके भगिनी होने की सूचना दे रहा है। जो उन दोनों में बड़ी है, उसके चेहरे की गोलाई और चमक चंद्रमा के इन्हीं गुणों से मुक़ाबला करने का साहस कर रही हैं। उसका क़द ऊंचा होने पर भी स्त्रियों के लिए असाधारण नहीं है। उसकी बातों में जोश, आँखों में चमक और ओठों पर लाली है। उसकी चाल में वैसा ही अल्हड़पन है, जैसा अविवाहित तथा पिता के घर रहनेवाली लड़कियों में अक्सर हुआ करता है। बातें करते करते यदि कोई हँसी की बात आती है तो उसकी हँसी मुसकान की सीमा को

छोड़कर, खिलखिलाहट की सीमा को लांघकर, अट्टहास की हद में आ कूदती है। उस हंसी से उसका समूचा शरीर हिलने लगता है। किसी भारी भूकम्प के आने पर जैसे कोई भारी सी इमारत डगमगाने लगती है, इसका हिलना वैसा ही मालूम होता है। छोटी का रंग कुछ पक्का, आंखें गाल और बड़ी, नाक ज़रा लंबी और नोकीली। कद बड़ी से कुछ कम—उसके कान तक। उसके स्वभाव में कुछ गंभीरता है। हँसती वह भी है, पर उसकी हँसी-खिलखिलाहट के घेरे से आगे कभी मुश्किल से ही बढ़ती है। सरांश यह कि दोनों अपने गुण और सुंदरता के कारण अच्छे अनुभवी पारखियों को चक्कर में डालनेवाली हैं। दोनों बहिनों की अवस्था में तीन साल का अंतर है। अभी तो इन तीनों रमणियों का वर्णन हम इतना ही करना चाहते हैं। इस वर्णन को पढ़कर कोई इन्हें साधारण स्त्रियाँ न समझ ले। इन्हें भारतीय इतिहास में अमर करनेवाला इनका प्रधान गुण, जिसके आगे इनकी अन्य सब विशेषताएँ फीकी पड़ जाती हैं, पीछे प्रकट होगा। परिचय इनका यही है, कि प्रौढ़ा श्री महा-राजा दाहिर की महारानी, और ये दोनों बहिनें, उनकी पुत्रियाँ, हैं। महारानी का नाम लाड़ी, बड़ी बहिन का नाम जया और छोटी का विजया है। इस समय ये अपने बाग में वायु सेवन कर रही हैं। तीनों की कमर में एक एक बड़ी कटार लटक रही है। इन से कुछ ही दूरी पर इनकी कई अंगरक्षिकाएँ नंगी तलवारें तथा अन्य आवश्यक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित घूम रही

हैं। कुछ समय के पश्चात् जब आकाश में सूर्य की लाली बढ़ गई तब उन्होंने अपनी बातों में अपनी दो चार अंगरक्षिकाओं को भी शामिल कर लिया।

"चलो, अच्छा हुआ, भगवान की कृपा से इस बार तो बला टली—और खूब टली," महारानी ने ज़रा गंभीरता से मुसकराते हुए कहा।

"इस युद्ध में भारतीय वीरता का लोहा फिर एक बार मान लिया गया, और अरबवाले, जहाँ तक मेरा ख्याल है, कभी भी इस ओर आक्रमण करने का साहस न करेंगे," विजया ने ज़रा आवेशपूर्ण स्वर में कहा।

"यदि तुम्हें राज्य की भीतरी स्थिति मालूम होती विजया, तो तुम इतनी शीघ्रता से यह बात न कहती, इसमें कोई शक नहीं, कि वे इस बार अच्छी तरह पराजित हो चुके हैं, और अभी कुछ समय तक तो वे शांत रहेंगे ही, पर उन्हें यह भी मालूम है, कि अपने राज्य की प्रजा में सामाजिक झगड़ा है, वही उनकी सफलता का कारण हो सकता है?" जया ने अपनी स्वाभाविक लापरवाही को छोड़कर कहा।

"सामाजिक झगड़ा कौन सा? क्या वह इतना महत्त्वपूर्ण है, कि उसका प्रभाव युद्ध की जय-पराजय पर पड़ सकता है?" एक अंगरक्षिका ने पूछा।

"नहीं क्यों? भविष्य की तो जाने दो। इस बार ही पराजय में क्या कमी थी? भाग्य हम लोगों के अच्छे थे, नहीं तो

तुम-हम सब को आज इस प्रकार यहां बातें करने के बजाय गढ़ के एक एक मोरचे पर सैनकों की सहायता करनी पड़ती, अस्पतालों में घायलों की सेवा शुश्रूषा करनी पड़ती, और अंत में शायद जौहर की भी नौबत आ जाती" जया ने कहा।

"यों तो लड़ाई की खबरों के विषय में जितने मुँह उतनी बातें हैं। पर मुझे तो पता लगा है, कि आज से चार दिन पहिले महाराज की सेना पर अरबों का अंतिम आक्रमण हुआ था। वह अत्यन्त ही भीषण था। महाराज अपने रक्षकदल के साथ बुरी तरह से घिर गये थे। लगभग सभी अपनी विजय की आशा से हाथ धो बठे थे। अरबों ने समझा, कि बस अब मैदान मार लिया। निकट विजय की आशा से उनका जोश मानो दूना हो गया था। ठीक इसी समय एक ओर से युवराज और दूसरी ओर से बड़े सेनापति, तीसरी ओर से छोटे सेनापति, और चौथी ओर से गजसेना ने अरबों को घेर लिया। बस, युद्ध का रुख पलट गया। महाराज के सैनिकों में मानों सौगुना प्राण आ गया। 'महाराज दाहिर की जय' और 'हर हर महादेव' के घोष से आकाश काँप उठा। 'अल्ला हो अकबर' और 'या अली' की आवाज दब गई। करीब दो घण्टे तक यही दशा रही। अन्त में अरबों के पर उखड़ गये। उनका सेनापति तो मरते मरते बचा" दूसरी अंगरक्षिका ने कहा।

" अरे, उसका बचना तो ठीक ही हुआ, बेचारा खलीफा को सच्चा सच्चा हाल तो सुना देगा। घोर घमासान करने के

बाद विजयप्राप्ति में जो आनन्द आता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। भैया की वीरता देखकर तो मेरा सिर गर्व से ऊंचा उठ गया है। वे तो सदा ऐसे अवसर की तलाश में ही रहा करते हैं।" जया बोली।

"जयशाह ने मेरे दूध को लजाया नहीं। आज मैं जयशाह की माता बनकर धन्य हुई। इस बार तो युद्ध में जाने के लिए उसने हमसे झगड़ा किया था। सारा घर सिर पर उठा लिया था। पहले के दो युद्धों में उसे बहुत दूर रक्खा था, उस पर सिर्फ छावनी और रसद के प्रबन्ध का भार था। महाराज तो फिर भी कुछ कुछ तैयार थे पर मेरा हृदय तो मां का था न? इकलौता बेटा, गद्दी के उत्तराधिकार की समस्या! लाचारी थी। इस बार मुझे अपने दिल को कड़ा करने के लिए विशेष प्रयत्न करना पड़ा। कभी कभी तो मेरा दिल चाहता है, कि हम क्षत्राणियों को या तो दिल ही न हो, या यदि हो ही तो उसमें कठोरता के सिवा कुछ भी न हो, और यदि कठोरता के सिवा ममता-माया आदि परस्पर विरोधी बातें हों, तो कम से कम हमें एकलौते बेटे की मां होने की कठोर कसौटी पर न कसा जाय," महारानी ने कहा।

"मुझसे तो भैया ने युद्ध के लिए कूच करने के दो दिन पहले ही कहा था, कि यदि उन्हें इस बार युद्धस्थल से पहिले की भाँति ही दूर रक्खा, या मन समझाने के लिए कोई ऐसा ही छोटा-मोटा काम दे दिया, तो वे क्षत्रियधर्म को सदा के लिए

तिलाञ्जलि देकर तपस्या के लिए चले जायँगे" जया ने कहा।

"महारानीजी, युवराज के लिए आपका गौरवान्वित होना तो स्वाभाविक है ही, पर एक एक सैनिक और एक एक प्रजाजन की भी यही हालत है। वे अपने को भाग्यशाली समझते हैं, कि उन्हें कभी ऐसे अनूठे वीर के शासन में रहना पड़ेगा।" तीसरी रक्षिका ने कहा।

"महारानी जी, अपराध क्षमा हो, एक बात मेरी समझ में नहीं आई। वह यह कि इतना बड़ा युद्ध विजय करने की खुशी में केवल चार दिन ही उत्सव के क्यों रक्खे गये। कम से कम पन्द्रह दिन तो होने चाहिये थे। पहिले दो युद्धों की विजय की खुशी में तो एक एक मास तक उत्सव मनाये गये थे। इस बार इतनी कमी क्यों?" चौथी रक्षिका बोली।

"इसका उत्तर तुझे उत्सव के बाद जो आम दरबार होगा, उसकी घोषणा में मिल जायगा।" महारानी ने कहा, "मुझे तो अपना स्वप्न सच होता मालूम पड़ता है।"

इस समय तक सूर्य आकाश में काफी ऊपर उठ आया था। तो भी इन लोगों की बातों का सिलसिला नहीं टूटता, यदि अन्तःपुर की एक दासी ने आकर उन्हें महाराज के नगर-प्रवेश के मुहूर्त की याद न दिलाई होती। दासी की यह बात सुनते ही सब भीतर चली गईं।

(ख)

नगर के सिंहद्वार के पास ही भगवती भद्रकाली का विशाल

मन्दिर था। यह निश्चित किया गया था, कि महाराज की सवारी इसी मन्दिर के आगे से होती हुई, शहर की मुख्य मुख्य सड़कों से गुजरकर राजप्रासाद के सामने के विशाल मैदान में समाप्त हो। सबसे आगे महाराज अपने घोड़े पर सवार थे। उनके साथ ही, पर, उनसे कुछ पीछे युवराज भी अपने घोड़े पर चल रहे थे। महाराज और युवराज के आगे पीछे उनके रक्षकदल के अश्वारोही सैनिक हजारों की संख्या में चल रहे थे। उनके पीछे प्रधान सेनापति अपने दल के साथ थे। प्रधान सेनापति के बाद छोटे सेनापति अपनी सेना सहित चल रहे थे। सब के पीछे गज-सेना चल रही थी। सिंहद्वार से निकल नियत मार्गों पर से गुजरकर मैदान तक पहुँचने में चार घण्टे लग गये। रास्ते में गुलाल और पुष्पवर्षा के साथ साथ अनेक प्रकार से महाराज और उनकी विजयी सेना का स्वागत किया गया। सूर्यास्त के कुछ ही पहिले यह विजयी सेना मैदान में पहुंची। प्रासाद के द्वार पर महारानी ने महाराज तथा युवराज की आरती उतारी। महाराज भीतर पधारे और सारी सेना अपनी छावनी में गई।

दूसरे दिन विराट दरबार हुआ। प्रधान मन्त्री ने प्रजा की ओर से महाराज तथा युवराज का अभिनन्दन किया। महाराज की उत्कृष्ट वीरता का गुणगान किया और युवराज की असीम शूरता का वर्णन किया। महाराज और सेना को उनकी शानदार विजय पर बधाई दी। प्रजा और सेना की ओर से भविष्य में

अवसर आने पर राजभक्त बने रहने और भरपूर सहायता देने का विश्वास दिलाया।

फिर महाराज ने गंभीर और उच्च स्वर में अभिनन्दन किया।

"मेरे राजभक्त प्रजाजनो, इस युद्ध में मेरे विजयी होकर लौटने के उपलक्ष में आपने जो मेरा अभिनन्दन किया है, उसके लिये मैं आपका हृदय से आभारी हूँ।

"बंधुओ, इस विजय का पूरा श्रेय माता भगवती की असीम अनुकंपा और मेरे वीराग्रणी सैनिकों तथा सेनापतियों की प्रचंड शूरता और अपूर्व रणकौशल को है।

"मित्रो, आपको यह जानकर अपार हर्ष होगा, कि इस विजय में आप के युवराज के असीम विक्रम का भी पूरा भाग है। यदि युवराज ठीक समय पर अपने दलबल सहित अरबसेना के व्यूह पर न टूट पड़ते तो आज हम लोगों को यह उत्सव मनाने का अवसर आता भी या नहीं इसमें संदेह है।

"प्रिय प्रजाजनो, आप लोगों ने, भविष्य में पड़नेवाले ऐसे अन्य अवसरों पर भी सहायता देते रहने का जो वचन दिया है उसके लिए आपके प्रति जितनी भी कृतज्ञता प्रगट करूँ वह थोड़ी ही है। यह आप जैसे राजभक्त और देशप्रेमी वीरों के उपयुक्त ही है। हमारे पूर्वपुरुषों ने आप लोगों के बहादुर बुजुर्गों के ऐसे ही बलिदान-युक्त प्रेम के बल पर समय समय पर अरबों पर विजय प्राप्त करके राज्य और धर्म की

रक्षा की थी।

"यद्यपि, हमारी सेना ने आक्रमणकारियों को भगा दिया है, और अब वे इस समय समुद्र पर जहाजों में अपने घावों की मरहमपट्टी करा रहे होंगे, पर अपने गुप्तचरों के संवादों के आधार पर, हम यह कह सकते हैं कि अब की बार उनका आक्रमण बहुत ही भयंकर होगा। समय अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। तथापि हमें तो युद्ध के लिए प्रति पल तैयार रहना ही चाहिए।

"मुझे अपने गुप्तचरों से यह भी पता लगा है कि इस बार वे हमारी प्रजा के कुछ ऐसे व्यक्तियों को फोड़ लेना चाहते हैं जो कुछ व्यर्थ के ही कारणों से परस्पर असंतुष्ट हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि वे (अरब लोग) उन लोगों को बड़े बड़े प्रलोभन देंगे। पर अपनी विजय के बाद वे आप ही लोगों के मंदिरों को भ्रष्ट करेंगे, धर्मस्थानों को अपवित्र करेंगे, माँ बहिनों की प्रतिष्ठा को कलंकित करेंगे, और आप लोग विश्वास रखिए कि जो प्रलोभनों के आशा-जाल में फँस कर अपने धर्म और देश के प्रति द्रोह करेंगे, उनकी वे आशाएं पूरी नहीं होंगी। अतएव मित्रो, यदि आगामी युद्ध में भी ऐसी ही शानदार विजय पानी हो तथा उनका समूल नाश करना हो, तो आप लोगों को चाहिए, कि अपने गहरे से गहरे पारस्परिक द्वेष को भूलकर एक हो जाइये।

(ग)

उपरोक्त घटनाओं के लगभग एक साल बाद

सिंध की पश्चिम सीमा के जंगल में बलूचिस्तान के लगभग, उस सड़क के पास, जो शांति के समय व्योपारियों और युद्ध के समय सैनिकों के बड़े काम की वस्तु सिद्ध हुआ करती है एक विशाल सरोवर था। उसके चारों ओर सराएँ बनी हुई थीं। इसमें यात्री और व्यापारी अकसर ठहरा करते थे। एक दिन सायंकाल के समय पश्चिमवाली सराय के एक कमरे के सामने चार मुसलमान व्यापारी नमाज़ पढ़ रहे थे। नमाज़ समाप्त होने के उपरांत खाने पीने से निपट चुकने के बाद उनमें से एक बोला; "रशीद अब की बार मालूम होता है, कि तुम सिंध के क़िलों पर अहले इसलाम का फ़तहयाब झण्डा गड़वाकर ही रहोगे। गुज़श्ता जंग की याद अभी हमारे सिपाहियों के दिलों में ताज़ा ही बनी हुई है। यार इसमें जरा भी शक़ नहीं कि वे काफ़िर गज़ब के लड़नेवाले हैं। लड़ने के वक्त वे अपने सिर की पर्वाह तो करते ही नहीं, फिर भला हमारे सिरों की चिन्ता क्यों होने लगी।"

"आपका फ़र्माना दुरुस्त है लेकिन मैं भी वह काम कर आया हूँ, कि हमें ख़ुदा चाहेगा तो इस बार फ़तह बहुत सस्ती पड़ेगी। अगर बहुत ही साफ़ कहूँ तो कह सकता हूँ कि पहिली तीनों हारों की कसर निकल जायगी। मेरे ख़ुफ़िआत्रों ने मुझे अबकी बार भरपूर मदद दी।" रशीद ने कहा।

इतने में तीसरे साथी ने कहा कि यार, बतलाओ तो

तुमने क्या क्या और कैसे किया ?

रशीद ने कहा—जनाब आपके क्या का जवाब तो यह है, कि मैंने वहाँ बौद्धों और वैष्णवों में खूब गहरी फूट डलवा दी है। और इस बात का पूरा इंतज़ाम कर दिया है, कि सिंध के हर एक शहर के बौद्ध, जब हम क़िलों पर घेरा डालेंगे, रात के समय दरवाज़े खोल दिया करेंगे। उन लोगों में फूट तो पहिले से ही थी पर मैंने उस आग को खूब भड़का दिया है। दाहिर और उसके सरदारों ने समझौता कराने की बहुत कोशिश की पर सब फ़िज़ूल हुई। अब यह बात तै शुदा समझो कि होनेवाली लड़ाई के आख़िर में या तो दाहिर को इस्लाम क़बूल करना पड़ेगा, या मरना पड़ेगा। हर हालत में उसकी दोनों लड़कियाँ ख़लीफ़ा के हरम में दाख़िल होंगी।"

चौथे ने पूछा—हाँ, यार तो बताओ, इस बार सिपहसालार कौन होगा ?

रशीद ने कहा, अबुलक़ासिम के सिवा और कौन होगा ? आजकल क़ासिम के दिन अच्छे हैं। क़िस्मत उसका साथ दे रही है।

इतना कहकर रशीद ने फिर कहा—अच्छा मियां, अब बन्दा तो थका माँदा है, सोयेगा, और अगर खुदा ने चाहा तो ख़्वाब में दाहिर की दोनों लड़कियों को देखेगा।

(घ)

"हाँ मन्त्री जी, आपने वह पत्र तो पढ़ लिया न जो अपने

गुप्तचर ने सीमाप्रान्त से भेजा है ? कहिये आप लोगों की क्या सम्मति है ?"

"महाराज, सम्मति इसमें क्या होगी ? मुझे आपने जो जो आज्ञाएँ दी थीं वे सब पूरी कर दीं, केवल बौद्धों और वैष्णवों में पूरा पूरा मेल न करा सका। यद्यपि ऊपर से तो मालूम पड़ता है, कि समझौता हो गया। युवराज ने भी पर्याप्त प्रयत्न किया है। क्यों युवराज आपको क्या आशा है ?"

"मुझे आशा क्या होगी, पर समझौता होने से जिन लोगों का स्वार्थ बिगड़ जाता, वे न जाने कब क्या कर बैठें ? यदि सेनापति आक्रमण के समय प्रत्येक स्थान के संदिग्ध व्यक्तियों को ध्यान में रख सकें तो कोई खटके की बात ही नहीं है ? क्या ऐसे लोगों को पहिले ही गिरफ़्तार कर लेने से काम न चलेगा, मन्त्री जी ?"

"नहीं युवराज, देश की सारी बौद्ध प्रजा बिगड़ जायगी।"

"मन्त्री जी परिणाम चाहे जो हो, यह तो निश्चित ही समझिये, कि यदि इस बार अरब जीते तो उन्हें यह विजय बहुत महँगी पड़ेगी। मैंने सब प्रबन्ध करा दिया है। अरबों को छठीं का दूध याद आजायगा।"

इसके बाद यह गुप्त मन्त्रणा समाप्त हुई।

(ङ)

इस घटना के लगभग एक ही महीने बाद सारा सिंध युद्ध की अग्नि से प्रज्ज्वलित हो उठा। महाराजा दाहिर भी पहिले

ही से सावधान थे। उन्होंने सब प्रबन्ध कर दिया था। अरब लोग टिड्डीदल की तरह सिंध देश में घुसे। सब से पहिले उन्हें अलोर पर रुकना पड़ा। यहाँ युवराज जयशाह ने मुक़ाबला किया। दो दिन तक लड़ाई हुई। दोनों दल बराबर रहे। कासिम घबरा उठा। उसने रशीद से कहा, कि सन्धि-पत्र लिख दो। रशीद ने कहा—जनाब ज़रा ठहरिये। घबराइये नहीं, तमाशा देखिये। कल सुबह सूरज निकलने के एक घण्टे बाद तक हमारी सारी फ़ौज क़िले में दाख़िल हो जायगी और हम परसों सुबह तक देवल में जाकर दाहिर को घेर लेंगे।

दूसरे दिन पौ फटने के एक घण्टा पहिले, जबकि जयशाह की सेना अपने दैनिक कार्यों से निपटकर अच्छी तरह तैयारी भी न कर पाई थी, कि किले का सिंहद्वार 'या अली' की आवाज़ के साथ खुला और अरबों के दल के दल बड़े वेग से घुसने लगे। सेना में भगदड़ मच गई। युवराज और सेनापति अपने अपने घोड़ों पर चढ़कर सेना को जमाने लगे, पर उन्हें अधिक सफलता न मिली। फिर भी जो लोग एकाएक मारे जाने से बचे वे डटकर लड़ने लगे। नियमितता तो रही नहीं, जो जिसके हाथ में आया वह वही लेकर भिड़ गया। यद्यपि दरवाज़ा खुल चुका था और एक अच्छी तादाद में अरब भीतर घुसकर मार काट मचा रहे थे, पर अभी तक क़िला पूरी तरह राजपूतों के कब्ज़े में था, और चारों तरफ़ मारकाट मच रही थी। राजपूतों के दल के दल आते जाते थे, और असंख्य

अरबों को काटते काटते धराशायी होते जाते थे। परिणाम यह हुआ, कि कासिम की आशा सुबह तक क़िला फ़तह कर दूसरे दिन सुबह देवल जा घेरने की पूरी न हुई। सायंकाल तक हज़ारों की तादाद में राजपूत मारे जा चुके थे। जो थोड़े से बचे वे तितर-बितर होकर देवल जाने के इरादे से चल दिये। कासिम ने युवराज और सेनापति को बहुत ढूँढा पर उनका कहीं पता न लगा।

इधर देवल में महाराज दाहिर अलोर के युद्ध का परिणाम जानने के लिए व्यग्र हो रहे थे। युवराज के मारे जाने और सेनापति के क़ैद हो जाने के समाचार की सत्यता जानने के लिए वे छटपटा रहे थे। इतने में उन्हें अरबों द्वारा क़त्लेआम में हज़ारों निरीह प्रजाजनों के मारे जाने, असंख्य धन के लूटे जाने, अनेक मन्दिरों के तोड़े जाने तथा कई प्रकार के अमानुषिक अत्याचारों का समाचार मिला। वे इस पर विचार कर ही रहे थे, कि उन्हें अरबों के देवल के निकट आ जाने का संवाद भी मिला। इस पर उन्होंने अपने दो विश्वस्त सरदारों को बुलाकर कान में कुछ कहा, और उनमें से एक को रावर, जहाँ महारानी रक्षा के लिए डटी हुई थीं, और दूसरे को ब्राह्मणाबाद जहाँ जया और विजया सेनापतित्व कर रही थीं, भेज दिया। इस प्रकार प्रबन्ध करके महाराज निश्चिन्त हुये ही थे, कि उनके कानों में 'दीन दीन' की आवाज़ पड़ी। महाराज सिंहद्वार की ओर अपने सरदारों के साथ अग्रसर हुए। वे अपने घोड़े पर

सवार चारों ओर घूमने लगे। अनवाश्यक स्थान पर से आदमियों को हटाते, आवश्यक स्थान पर नियुक्त करते हुए इधर उधर घूमने लगे। इस प्रकार तीन दिन युद्ध हुआ, चौथे दिन आधी रात को पश्चिम का दरवाज़ा एकाएक खुला और अरब सेना 'अल्लाहो अकबर' चिल्लाती हुई घुसी। अतः राजपूत इधर उधर भागने लगे। सुबह होने पर जब घटना की वास्तविकता समझ में आई और महाराज ने उन्हें जोशीले भाषण द्वारा उत्तेजित किया तो जमकर लड़ाई होने लगी। क़ासिम भी क़िले में घुस आया था। महाराज और उसका सामना होगया। दोनों वीरों को अपने अपने हाथ आज़माने का बढ़िया मौका मिला। इतने में महाराज के भाले का उसके सिर पर घाव लगा। वह बेहोश हो गया। महाराज ने उसे उसके रक्षकों द्वारा उसकी छावनी में भिजवा दिया। जिस समय वे यह प्रबन्ध कर रहे थे, कि सामने से एक तीर महाराज की छाती में लगा, और महाराज सदा के लिये सो गये। अब तो अरबों की खुशी का पार न रहा। इधर राजपूतों का जोश दूना हो गया, पर इस जोश से क्या होता था। एक एक करके हज़ारों मारे गये, और स्वर्गोपम नगर मरघट में परिणत हो गया।

देवल विजय करके क़ासिम अपनी सेना सहित रावर की ओर बढ़ा। यहाँ लाड़ी सेनापतित्व कर रही थी। यहाँ अलोर और देवल की खबरें पहुँच चुकी थीं। पुत्र और पति दोनों ही से वह हाथ धो चुकी थी। यद्यपि पुत्र की मृत्यु का निश्चित

संवाद नहीं था तथापि ऐसे समय में मृत्यु का विश्वास होना अधिक संभव था। अब उसके लिए संसार में क्या था! उसका दुःख इस बात को सुनकर अधिक बढ़ गया था, कि यह जो कुछ हुआ सब विश्वासघात का परिणाम था। अतः उसने सब से पहिले तो यह किया, कि क़िले और नगर के संदिग्ध व्यक्तियों को तो मरवा डाला और कम संदिग्धों को क़ैद कर उन पर कड़ा पहरा बैठा दिया। जब क़ासिम की सेना ने घेरा डाला तो दीवारों पर से दोनों दलों में तीरों की लड़ाई होती रही, पर यहाँ आदमी पहिले ही कम थे। कई दिनों तक युद्ध होता रहा। क़ासिम की सेना ने संवाद और रसद के मार्ग सब बंद कर दिये। जब महारानी को पता लगा कि रसद की कमी के कारण कुछ दिनों बाद भूखों मरना पड़ेगा, तो उन्होंने सब स्त्रियों और सरदारों को एकत्र कर के कहा—

"मेरे प्यारे पुत्रो और बहिनो, ज्यादा बातों का तो समय नहीं है। दुर्ग की दशा आप से छिपी नहीं है। मेरे पति, तुम्हारे महाराज अब इस संसार में नहीं हैं। और पता नहीं, मेरा पुत्र, तुम्हारा युवराज, इस समय कहाँ किस दशा में है? तुम लोगों को अलोर और देवल का हाल मालूम हो चुका है। यहाँ उन लोगों के अत्याचार वहाँ की अपेक्षा भीषण होंगे, क्यों कि यहाँ स्त्रियाँ और धन अधिक है। अतः कहिये आप क्या चाहते हैं? गौरवपूर्ण मृत्यु या अपमान भरा जीवन?"

चारों ओर से आवाज़ें आने लगीं, 'मृत्यु' 'गौरवपूर्ण मृत्यु !' उधर से स्त्रियों ने कहा 'जौहर'। "अच्छा तो बस फिर मेरे वीरो यही हो।' कहकर महारानी ने कुछ चुने हुए सरदारों को रोक कर बाक़ी सब को भेज दिया।

फिर राजप्रासाद के सामने के मैदान में एक विशाल चिता रची गई। कपूर, राल आदि ज्वाला-ग्राही पदार्थ उस पर रख दिये गये। फिर महारानी असंख्य स्त्रियों के साथ चिता पर जा चढ़ी। चिता में आग लगा दी गई। ज्वालायें उठने लगीं। अनेक प्रकार के बाजों का गगन-भेदी नाद होने लगा। बाहर पड़े हुए बेचारे अरब कुछ भी न समझ सके, कि भीतर क्या हो रहा है ? वे हक्के बक्के होकर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। थोड़ी देर में लपटें कम हुईं। जलते हुए अंगारे और दुर्गन्ध के सिवाय कुछ न बचा।

अब क़िले के सरदार ने दुर्ग के चारों द्वारों पर एक-एक हज़ार आदमी नियत कर दिये। शहर के प्रत्येक मन्दिर पर सौ सौ व्यक्ति रख दिये, और बाक़ी बचे हुए लोगों को इधर-उधर घूमने की अनुमति दे दी और कहा कि मारो और मर जाओ। फिर सुबह होते ही फाटक खोल दिये गये। अरबों ने समझा कि हारकर दरवाज़े खोल दिये है। वे खुशी-खुशी कूदते-फाँदते घुसने लगे। पर यहाँ तो मामला टेढ़ा नज़र आया। घुसते ही लेने के देने पड़े। अब की उन्हें साक्षात मौत से सामना करना पड़ा। दरवाज़ों से निकलने पर अरबों ने

समझा था, कि लूट का माल हाथ लगेगा, पर उन्हें तो चारों ओर छोटी छोटी टुकड़ियाँ मिलीं। अब राजपूतों को सिवाय मारने के कुछ सूझता ही नहीं था। इस प्रकार दो दिन तक युद्ध हुआ। अन्त में संपूर्ण दुर्ग पर अरबों का अधिकार हो गया, और फिर अमानुषिकता का तांडव होता रहा।

इसके पश्चात् क़ासिम ब्राम्हणाबाद की ओर बढ़ा। यहाँ भी चार-पाँच दिन तक भीषण युद्ध हुआ। अरबों के दिल लगातार विजयों के कारण बढ़ गये थे। अन्त में कुछ सैनिकों की असावधानी से एक क़िले का द्वार टूट गया। अरब सेना एक दम से घुस पड़ी। चारों ओर मारकाट मच गई। अनेक स्त्रियों ने भयानक रूप से जौहर किया। प्रत्येक घर में घी, कपूर और लकड़ियाँ तो मौजूद ही थीं, और अग्नि प्रज्वलित करने में इन्हीं चीज़ों की ज़रूरत होती है। नगर में आग लग गई। चारों ओर धुआँ ही धुआँ नज़र आने लगा। हज़ारों की संख्या में नगरनिवासी क़ैद किये गये। दुर्भाग्य से जया और विजया भी क़ैद हो गईं। क़ासिम ने लूट के सामान के साथ क़ैदियों को खलीफा के पास भेज दिया, और स्वयं जीते हुए देश का प्रबन्ध करने को वहीं रह गया।

(च)

खलीफ़ा का आम दरबार लगा हुआ है। खलीफा ने बड़ी शान से अपने वज़ीर से पूछा—क़ासिम ने सिन्ध से मेरे लिये क्या क्या चीज़ें भेजी हैं?

वज़ीर ने उत्तर दिया—जहाँपनाह, सोना-चाँदी खज़ाने में, घोड़े अस्तबल में, और औरतें हरम में पहुँचा दी गई हैं।

खलीफ़ा ने वज़ीर को आज्ञा दी कि शहर में इस जीत की खुशी में आठ दिन लगातार जलसा हो।

इधर खलीफ़ा के ज़नाना महल के एक कमरे में जया और विजया दोनों बहिनें बैठी हुई हैं। दोनों काफ़ी गंभीर हैं। विजया ने जया से धीरे से पूछा, कि अभी खलीफ़ा आयगा उस समय हमें क्या करना चाहिये? जया ने बहुत ही धीरे से कहा कि तू तो सिर्फ़ रोने में मेरा साथ देना, बाक़ी बातें सब मैं कर लूँगी। अब अपने राज्य का और कुल का तो नाश हो ही चुका है। पर इसका बदला सिर्फ़ कासिम की मृत्यु से ही लिया जा सकता है। वह सब तरह से योग्य है और यदि इसी समय वह मरवा दिया जाय तो सिन्ध पर अरबों का राज्य स्थिर न रहने पायगा और फिर शीघ्र किसी न किसी हिंदू राजवंश का वहाँ फिर अधिकार होगा। हमें तो मरना था ही। वहाँ सही या यहाँ सही।

उन की बातें पूरी हुई ही थीं, कि खलीफ़ा के आने की खबर मिली। जब खलीफ़ा ने कमरे में प्रवेश किया तो उनका हृदय उसके प्रति तीव्र घृणा से भर गया, पर वे अपने घृणा के भाव को दबाकर खड़ी हो गईं। खलीफ़ा उनके रूप पर पहिले ही लट्टू हो चुका था। उनके इस सभ्यतापूर्ण बर्ताव ने उसे पिघलाकर उनसे बातें करने के लिए ढीठ बना दिया।

और बातों के सिलसिले में जब उसने उनसे विवाह का प्रस्ताव किया तो दोनों बहिनों ने फूट-फूटकर रोना शुरू कर दिया। कारण पूछने पर उन्होंने रोते-रोते कहा कि हम आपके लायक़ नहीं रहीं, हमें तो आपके सेनापति ने पहिले ही नापाक कर दिया। यह सुनते ही ख़लीफ़ा ग़ुस्से से तमतमा उठा, उस ने वज़ीर को कहा कि अबुलक़ासिम को जीवित ही मरे बैल की खाल में सीकर मेरे सामने हाज़िर करो। आज्ञा का पालन हुआ। क़ासिम रास्ते में ही मार डाला गया। उसकी लाश बैल की खाल में मिली हुई खलीफ़ा के सामने पहुँची। जब दोनों बहिनों ने उसकी लाश देखी तब उन्होंने खलीफ़ा को उसकी मूर्खता की सारी सच्ची बातें बतला दीं, और फिर दोनों बहिनें अपने अपने पेट में कटार मारकर वहीं गिर पड़ीं।

इतिहास कहता है, कि खलीफ़ा अपनी मूर्खता पर बहुत पछताया—और उसने चिढ़कर उन वीरांगनाओं के नश्वर शरीर को कुत्तों के आगे डलवा दिया।

इस प्रकार, भारतीय वीरता का ज्वलंत उदाहरण, राजपूतों का यह पहला जौहर शानदार ढंग से समाप्त होकर भारतीयों की वीरता को अमर कर गया।

दूसरी ज्वाला

दृश्य पहला

स्थान—सक्खर के पास घना जंगल।

समय—सायंकाल के ५ बजे।

(डेढ़ हज़ार घोड़ों और डेढ़ हज़ार खच्चरों की पीठ पर राजकर-रूप में वसूल किया हुआ धन लादकर तीन हज़ार साईस और एक हज़ार यवन सिपाही दिल्ली की ओर जा रहे हैं।

यवन सेना के अफ़सर अपने लश्कर के आगे हैं।)

अफ़सर—लो यार रुस्तम, अब क़रीब डेढ़ घण्टे की देर और है। फिर तो सिंध के किनारे डेरा पड़ेगा। मेरा इरादा तो कम से कम तीन दिन और तीन रातें सिंध के किनारे ही बिताने का है।

रुस्तम—मियाँ अहमद, क़सम पाक परवरदिगार की, मालूम होता है, ख़ुदाने तुम्हारी फ़ितरत में काहिली कूट-कूटकर भर दी है। भला सिपाहियों को इतने दिन आराम करनेकी क्या ज़रूरत है? साथ में इतने भारी ख़ज़ाने की जोखिम! ज़्यादा से ज़्यादा आठ घंटे का आराम काफ़ी है। हमें देहली तक पहुँचना है। रास्ते में ज़्यादा देर ठहरने से जहाँपनाह की नाराज़गी का भी तो अंदेशा है।

अहमद्—अरे मियाँ तुम तो अब तक भी बूदमबेदाल ही रहे। बादशाह की नाराजगी भी डरने की चीज़ है? इन तीन हज़ार पीठों पर लदे हुए धन को देखकर बादशाह सलामत का गुस्सा काफूर हो जायगा। मियाँ सच मानो मेरी बात को।

रुस्तम—और रास्ते में किसी ने यह सारा खज़ाना लूट लिया तो?

अहमद—जाओ हटो, चूड़ी और इज़ार पहनकर मेरे हरमसरा की रौनक बढ़ाओ। कह दिया चट से 'लूट लेंगे तो? गोया लूट लेना बच्चों का खेल ही है। मेरा मातहत शाही लश्कर मानों हिजड़ों का गिरोह भर है। यह जानते ही नहीं, कि हमें लूटनेवाले के दिल में हम से चार गुनी हिम्मत चाहिये। उसके पास हमसे छै गुना लश्कर चाहिये। साथ ही उसका अपनी जिन्दगी से बेज़ार होना भी लाज़मी है। जिसमें ये तीन बातें हों, वह दर-असल हमें लूटने की कोशिश कर सकता है। तो भी कामयाबी मिलेगी, या नहीं, यह बतलाना किसी नजूमी का काम है।

रुस्तम—वाह रे मेरे शेरेबबर! मेरी एक ज़रासी हँसी की बात पर यह तुनकमिज़ाजी। (अपनी ओर कुछ सवारों को आते देख कर) यह लो, ये कौन आ रहे हैं?

अहमद्—होंगे बेचारे कोई आवारा। घूम फिर रहे होंगे अपनी रोज़ी की तलाश में। (उन सवारों के पास आ जाने पर)। अरे, तुम लोग कौन हो? यहाँ इस जंगल में क्यों घूम रहे हो?

१ घुड़सवार—('तुम' सुनते ही चेहरा तमतमा उठता है, पर अपने क्रोध को रोककर ।) हम राजपूत हैं। खेती-बारी हमारा धंधा है। मेरा नाम जैतू है। ये दोनों मेरे भाई हैं। इनके नाम लूणकर्ण और भीरो हैं। हम जैसलमेर राज्य के निवासी हैं। नदी के उस पार जैसलमेर की रियासत में हमारे खेत हैं। आज इस पार हम अपने बैलों को ढूंढते चले आये हैं ।

अहमद—तो मालूम होता है, तुम्हारे पास माल बहुत है। हम तुमसे जज़िया वसूल करेंगे।

जैतू—आप हमसे क्या वसूल करेंगे ?

अहमद—जो कुछ तुम्हारे पास है, उसमें से आधा।

जैतू—(अपने क्रोध को रोककर।) अच्छा जैसी, आपकी मर्ज़ी।

(अहमद अपने कुछ सिपाहियों को इशारा करता है और वे जैतू और उसके साथियों से कुछ आभूषण और रुपया पैसा ले लेते हैं। जैतू के साथी आवेश में आते हैं पर जैतू उन्हें रोक देता है।)

दृश्य-परिवर्तन—

सिंध के किनारे राजपूतों की छावनी। जैतू अपने दोनों भाई तथा अपनी सेना के कुछ अफसरों से बातें कर रहा है।

जैतू—करणसी, दूत आया ?

करणसी—हाँ अन्नदाता, आगया।

जैतू—क्या खबर लाया ?

करयासी—यहाँ के चार मील उत्तर की ओर, नदी के किनारे, शाही लश्कर ने डेरा डाला है। सेना में चार अफ़सर हैं। सबसे बड़ा अहमद है। सुलतान की एक रखेली का भतीजा होने से उसे नौकरी मिली है। वह घमंडी है। निशस्त्र प्रजा से वह बहुत अच्छी तरह लड़ सकता है। वह आलसी और अय्याश है तीन। दिन और तीन रात इसी जंगल में रहकर शिकार खेलने का उसका इरादा है, और सुलतान की हिन्दू प्रजा से ये धन लूटकर लाये हैं।

जैतू—अच्छा तो बोलो अब क्या विचार है ?

करयासी—मेरा विचार क्या होगा ? जो आप कहेंगे। आप तो केवल आज्ञा दीजिये। अहमद का सिर और घोड़े और खच्चर आपके चरणों पर ला पटकूं, पर आप सोच लीजिये बाबा साहब क्या कहेंगे ?

जैतू—अरे बाबा साहब, इसमें क्या कहेंगे ? हम बाबा साहब के लाड़ले पोते जो हैं। यदि वे अधिक से अधिक नाराज़ हुए तो बड़ा से बड़ा दण्ड यही देंगे कि हमें फिर कभी इस जंगल में आखेट खेलने न आने देंगे। और यदि आने भी दिया तो साथ में मंत्री जी जैसे किसी दूरदर्शी को भेज दिया करेंगे। बस

करयासी—तो आपका संकल्प पक्का है ?

जैतू—अभी भी तुम्हें विश्वास न हुआ। क्या तुम्हें मेरे जीवन की कोई ऐसी घटना याद है जो मेरे निर्बल संकल्प का

स्मारक हो, मैं तो फिर भी कहता हूँ कि इस धन पर जितना सुलतान का अधिकार है उतना ही हमारा भी। इन्होंने तो इसे लूटा है बेचारी निरीह प्रजा से और हम लूटेंगे इसे इन बहादुरों से। हमें अपने अनेक वीरों का रक्त चढ़ाना पड़ेगा। आज भी और भविष्य में भी हम यह धन सेंत-मेंत लेना नहीं चाहते हैं। यह तो हमारी क्षात्र परंपरा है।

करमसी—अच्छा तो फिर आज्ञा दीजिये। मैं तय्यारी करूँ। तैयारी में एक घंटा लगेगा। इतने में आप भी तैयार होजाइये।

जैतू—अच्छा।

दृश्य-परिवर्तन—

(स्थान यवन-छावनी। समय दिन के चार बजे। एक डेरे के बाहर अहमद और रुस्तम अपने अपने बिस्तर पर लेटे हुए हैं। अहमद आँखें मल रहा है।)

अहमद—मियाँ रुस्तम ! अजी मियाँ रुस्तम ! अजी मियाँ रुस्तम ख़ान बहादुर।

रुस्तम—लो तुमने तो नींद भी हराम कर डाली।

अहमद—अरे यार देखो तो, क्या बढ़िया ठंडी हवा चल रही है।

रुस्तम—मेरी दुआ है, कि खुदा तुम्हें जन्नत में हूरो-गिलमाँ तो दे पर नींद न दें।

अहमद—क्यों ?

रुस्तम—इसलिए कि तुमने मेरी नींद तो उड़ा ही दी।

(ठीक इसी समय चारों तरफ होहल्ला मच जाता है। मारो-काटों की आवाज़ होने लगती हैं। अहमद और रुस्तम हक्के-बक्के होकर अपने अस्त्र-शस्त्र सम्हाल कर एक ओर चले जाते हैं। लगभग एक घंटे तक मार-काट मची रहती है। फिर धीरे धीरे आदमी कम होते जाते हैं। और चारों तरफ़ घायलों के कराहने की आवाज आती है और लाशों का ढेर दीखने लगता है।)

दृश्य परिवर्तन

(स्थान—राजपूतों की छावनी। समय दिन के ग्यारह बजे। जैतू अपनी कुर्सी पर बैठा हुआ है। सामने अहमद खड़ा है। उसका सिर खुला और हाथ रस्सी से बँधे हुए हैं। जैतू के भाई, करणसिंह और अन्य राजपूत सैनिक आसपास खड़े हैं।)

जैतू—जनाब का इरादा तो तीन दिन और तीन रात आराम करने का था। पर भगवान को कुछ और ही करना था।

अहमद—मुझे यह नहीं मालूम था, कि राजपूत लोग इतने कमीने होते हैं। यह भी कोई बहादुरी थी, कि रात को एकदम छापा मार दिया। कल शाम को जब मैंने आपको देखा था, तब तो आप इतने खूँख्वार नहीं दिखते थे। आपके साथी भी इतने नहीं थे।

जैतू—जनाब अहमद खाँ साहब, यह तो समय का परिवर्तन है। हर एक क़ौम में कमीनापन होता है। राजपूत इस नियम के अपवाद नहीं हो सकते। पर राजपूतों की यही तो विशेषता है, कि वे कमीनापन सफलतापूर्वक कर सकते हुए भी नहीं

करते हैं। राजपूत लोग जानते हैं कि राजनीति का एक आवश्यक अङ्ग कूटनीति भी है। राजपूत लोग मानते हैं, कि राजा के लिये कूट व्यवहार करना अनिवार्य है, तो भी वे उसे जानबूझ कर नहीं करते हैं।

अहमद—अगर मुझे...

जैतू—वे कूट नीति के अभाव में पाई हुई विजय या पराजय को ही आदर्श समझते हैं। यद्यपि इसका बुरा फल भारत को भोगना पड़ता है और भविष्य में भी भोगना पड़ेगा। पर आदर्श भी तो कोई चीज होती है।

अहमद—अगर मुझे ज़रा भी गुमान होता कि आप लोगों के दिल में इतनी स्याही भरी है, तो मैं इतना आरामतलब न होता।

जैतू—खान साहब, गुमान के इस अभाव ने तो यह सारा संपन्न देश आपके कदमों पर डाल दिया है। पृथ्वीराज को अगर ज़रा भी 'गुमान' होता कि मुहम्मद गोरी अपने पर की हुई दया को भूलकर, उसे धोखा देकर पराजित करेगा तो आज दिल्ली पर हमीं राजपूतों का झंडा उड़ता होता। एक बार ही नहीं अनेक बार इस 'गुमान' के अभाव ने बड़ा ग़ज़ब ढाया है और हमारे यह 'कमीनापन' करने से केवल एक मतलब था और वह यह कि आप लोग भी यह जान जाएं; कि हम लोग भी अगर चाहें, और आप की तरह करने पर तुल जाएं तो 'कमीनापन' कर सकते हैं। और जिस दिन हम तुल जाएँगे उस

दिन आपका अस्तित्व हिन्दोस्तान में न होकर और कहीं होगा। (करणसिंह से) अच्छा, करणसिंह, इन खां साहब को एक पालकी, चार कहार, और दस रक्षक दो। खाने-पीने का सामान दो। रास्ते में, इन्हें छोड़ देने के सिवा, सब तरह का आराम दो। और कह दो, दिल्ली से दस मील इधर छोड़कर वे लोग वापिस आ जाएं।

करणसी —(हाथ जोड़ और सिर झुकाकर) जो हुक्म।

(करणसिंह अहमद को अपने साथ ले जाता है। और राव अपने स्थान पर चले जाते हैं।)

दृश्य दूसरा

स्थान—दिल्ली में शाही दरबार।

समय—दुपहर के दो बजे।

(बादशाह अलाउद्दीन का दरबार लगा हुआ है। मीर महबूबखाँ मीर अलीखाँ और अन्य अमीर उमराव यथास्थान बैठे हैं।)

(दरबान का प्रवेश)

दरबान—(कोर्निश) करके खुदावंद सिपहसालार अहमद खाँ बदसूरत और बदहवाश हाजिर हुए हैं। वे उसी हालत में हुजूर की क़दमबासी की इजाजत चाहते हैं।

अलाउद्दीन—ऐं! क्या! अहमद खाँ! बदसूरत और बद हवाश! खज़ाना और लश्कर क्या हुए? दस दिन पहिले तो मुलतान से रवानगी की खबर आई थी न वज़ीर?

वज़ीर—हाँ खुदावन्द।

अलाउद्दीन—अच्छा हाज़िर करो।

(दरबान कोर्निश करके चला जाता।)

अहमद खाँ दिलेर और ईमानदार अहमद खाँ! अकेला, बदसूरत और बदहवाश!! ताअज्जुब और अफ़सोस।

वज़ीर—जहाँपनाह का कोई दुश्मन अपनी जिंदगी से बेज़ार हो उठा मालूम होता है।

अलीखाँ—इन दब्बू काफ़िरों के मुल्क में भी ऐसा कोई बशर है?

(दरवान अहमद खाँ को साथ लेकर आता है। अहमदखाँ कोर्निश करके भर्राई हुई आवाज़ से बोलता है।)

अहमदखाँ—जहाँ पनाह, खुदावन्द, खुदा आपका इकबाल बलन्द करे! मैं बिलकुल बेगुनाह हूँ। मेरे साथ धोखा किया गया। शाही खज़ाना लूट लिया गया। शाही लश्कर का कत्लेआम कर दिया गया। सिर्फ मुझ गुलाम को इरा वतन छोड़ा है।

(रोता है।)

अलाउद्दीन—अहमद, रोओ मत। साफ़ कहो। बात क्या है?

अहमद—जहाँपनाह, आपका गुलाम मुलतान से शाही खजाना और शाही लश्कर लिये आरहा था। रास्ते में कुछ जेसलमेरी बनिये मिले। मैंने उनसे जज़िया वसूल किया। रात को सिंध के किनारे पड़ाव डाला। दिन निकलते निकलते एकाएक हम पर हमला हुआ। सब मारे गये। खजाना लूट लिया गया। मुझे क़ैद करके जब सरदार के आगे पेश किया गया। तो पता लगा कि वे जेसलमेरी बनिये जिनसे मैंने एक दिन पहिले जज़िया वसूल किया था, इन सारे फ़साद की जड़ हैं। वे जैसल मेर के शाहजादे थे। वे तीन भाई थे। सबसे बड़े का नाम जैतू था। उस दिन तो उनके साथ पचास आदमी ही थे। लूट के दूसरे दिन पता लगा कि उनके साथ सात सौ घुड़-सवार और बारह सौ ऊँट थे।

अलाउद्दीन—अच्छा, काफिरों की यह हिम्मत। फिर क्या हुआ? बोलो।

अहमद—दूसरे दिन उस मगरूर शाहज़ादे ने मुझे बहुत ज़लील किया। और मुझे ज़िंदा सिर्फ़ इस लिए रखा, कि मैं आप को सारे वाक़ियात की ख़बर पहुँचा दूं।

वज़ीर—गज़ब का हौसला किया, उन लोगों ने।

अमीरखाँ—लेकिन जब शाही लश्कर जैसलमेर के क़िले को घेर लेगा, तब तो लेने के देने पड़ जाएंगे न?

वज़ीर—तो क्या उन लोगों का इसका अन्देशा न हुआ होगा?

अलाउद्दीन—मैं भी तो यही सोचता हूं! आख़िर बात क्या हुई!

अहमद—हुज़ूर वे बड़े मग़रूर हैं। उन्हें अपनी बहादुरी का बड़ा घमंड है।

अलाउद्दीन—अच्छा तो मैं भी उनकी बहादुरी का इम्तहान लेना चाहता हूं। अमीर खां, जल्दी तैयार करो। तीस हज़ार लश्कर से क़िला घेर लो। साथ में महबूबखाँ को भी लेजाओ।

१ अमीर—बस, खुदावन्द के हुक्म भर की देर थी। जैसलमेर का क़िला तो अब ज़मींदोज़ ही समझना चाहिये।

२ अमीर—मेरा ख़याल है, ज्यादा से ज्यादा छः महीने लगेंगे

अलाउद्दीन—ठीक है, तो सब तैयार रहें। यह दीन इस्लाम की इज्ज़त का सवाल है। गाज़ियों के लिए जन्नत में हूरो-गिलमा

मुंतज़िर है। हां, एक बात का ख़याल रहे, अगर जैसलमेरी राज-पूत इस्लाम कबूल करने पर आमादा हो जाएं तो जंग न किया जाय। पर, देखो अब हमारी ओर से ऐसी ग़फ़लत न हो, कि वे हमें आसानी से धोखा दे जाएँ।

अमीरखां—खुदावंद, इतमीनान रखिये, इस बार ज़रा भी ग़फ़लत न होगी। जल्दी ही आपके पास यह खबर आजाएगी कि जैसलमेर के किले पर शाही झंडा लहराने लग गया है।

(अलाउद्दीन उठकर चला जाता है। और दरबार बरखास्त होता है)

दृश्य तीसरा

स्थान—जैसलमेर का राजमहल।

समय—दिन के ग्यारह बजे।

(महारावल जैतसी का दरबार लगा हुआ है। सब सरदार-सामन्त यथास्थान बैठे हुए हैं। सबके चेहरों पर गंभीरता है।)

जैतसी—मंत्री जी, दिल्ली से सुल्तान का जो पत्र आया है वह सामन्तों को आपने सुना ही दिया होगा। अब उस पर विचार करना चाहिये।

जैचंद—क्या यह संभव है, कि हम सुलतान की अधीनता स्वीकार करलें? हम यादव हैं। कर्मयोगी कृष्ण का रक्त हमारी धमनियों में बहता है हम ईंट का जवाब पत्थरसे देंगे।

राहब—शत्रुओं से लोहा लेना हमारा धर्म है बिना हिचकिचाहट के मरना-मारना हमारे जीवन का प्रधान अंग है। राजकर के नाम एक फूटी कौड़ी भी हम न देंगे।

भीकणमल—सुलतान हम से आधा राज्य मांगता है। आधा राज्य तो रहा दूर अपनी धरती का एक पग भी हम न देंगे।

सीहब—अजी राजकुमारों ने खेल खेल में थोड़ी सी लूटमार करली। उसी पर इतना वावेला। हमारी निरीह प्रजा को समय-समय पर सुलतान की सेनाएं जो लूट लिया करती हैं सो मानों हमारी प्रजा तो अनाथ है। उसका कोई

संरक्षण करनेवाला ही नहीं है। हमारी प्रजा तो जैसे खेती के आसपास की घास है।

आसकर्ण—आप लोगों का उत्साह प्रशंसनीय है। आप लोगों की वीरता प्रसिद्ध है। आप लोगों का बलिदान संदेह से परे है। आपकी रणगर्जना मेघ गर्जन से भीषण है। आपका अट्टहास गगनभेदी है। आपका खड्गप्रहार वज्रपाती के समान है। आपका कटारविक्षेप अचूक है। आपकी बाणविद्या मृत्यु की प्रेमपाती है। पर मेरा एक नम्र निवेदन यह है, कि हमे अपने अन्य साधनों का भी विचार कर लेना चाहिए।

मन्त्री—अन्य साधनों का विचार और क्या ?

आसकर्ण—अन्न और जल का प्रबंध। अगर बाहर से अन्न का प्रबन्ध न हुआ तो, अपने दुर्ग के ही अन्न पर हम कितने दिनों ठहर सकेंगे ? फिर धन का प्रश्न भी विचारणीय है। आवश्यकतानुसार हथियार भी तो समय पर हमें बाहर से ही मंगवाने पड़ेंगे। घेरा डालनेवाले तो बाहर से हमारा थोड़ा सा भी सम्बन्ध न रहने देंगे।

मन्त्री—ठाकुर साहब, विदेशी आक्रामकों से बारबार ठगे जाकर, अब हम भी सावधान हो गये हैं। हम घिरे रह कर भी अपनी रक्षा का भरसक प्रयत्न करेंगे। हम इसी दुर्ग में घिरे रहकर भी कई साल तक मुकाबला करेंगे, और मैं

अपनी कार्यप्रणाली कल ही महारावल जी से निवेदन कर चुका हूं।

जैचंद—क्या हम लोग आपकी कार्यप्रणाली को नहीं जान सकते ?

जैतसी--इतनी जल्दी क्यों करते हैं ? अभी से जानकर क्या करियेगा ! आपको निश्चिंत होकर जूझने के लिए जो जो सामान चाहिये वह सब ठीक समय पर मिलता रहेगा। और यदि मान लीजिये कि पर्याप्त समय तक डटे रहने के बाद या अन्य किसी आकस्मिक घटना से हमारे पास साधन न रहे, तो आप क्या करेंगे ? क्या आप अपनी बलिदान परंपराओं के विरुद्ध मुझे, अपने राजा को अपनी निरीह प्रजाओं को, अपने पुत्र-कलत्र को, अपने अपने भाग्य पर छोड़ जाएँगे ? क्या आप जैसलमेर की राजपताका को शत्रुओं से पद-मर्दित की जाने को छोड़ देंगे ? क्या आप जैसलमेर की धरती को विधर्मियों से रौंदी जाने के लिए छोड़ देंगे ? क्या आपके मन्दिर विजेता प्रतिपक्षियों के विजयोल्लास से गूजेंगे ? मैं पूछता हूँ आप से। उत्तर दीजिये।

जैचंद—नहीं, अन्नदाता नहीं। कभी नहीं। मैंने तो यौंही यह प्रश्न कर लिया था। मेरी ओर से, और सब सामंतों की ओर से आप निश्चिंत रहियं। हमारी ओर से स्वप्न में भी आप कोई अन्यथा विचार न करिये। हमारे अन्य सब साधन कम हो सकते हैं, पर हमारा केसरिया बाना तो हमारा ही है।

सब—धन्य हो ! धन्य हो !! धन्य हो !!!

जैचंद—संसार में अनेक वीर और समरजीवी जातियाँ हो चुकी हैं, और आज भी हैं। पर किसी ने भी अपने कलेवरों को केसरिया बाने से सज्जित नहीं किया। केसरिया बाने को हमीं, राजपूतों ने अपनाया है। वह हमीं पर मोहता है। हमीं उसकी लाज रख सकते हैं। वह हमारा है, हम उसके हैं। यों तो हर कोई दो पैसे के केसरिया रंग में चाहे जब अपने कपड़े रँग सकता है। संसार में केसरिया रंग का टोटा नहीं है। पर वह रंग और उससे रँगे हुए वे कपड़े, जिन्हें हमारी माँ और बहिनें, हमारी पुत्रियां और कुलवन्तियाँ हमारे अनुपमेय महाप्रयाण के एक दिन पहिले रँगती हैं, अमूल्य हैं। संसार की संपदा उसका मूल्य नहीं चुका सकती। उक्त सम्पत्ति के उत्पादक विक्रेता और ग्राहक हमीं हैं। उसका पूरा पूरा मूल्य तो है हमारा रक्त, हमारा रणमाता बलिदान और राजपूत वीरांगनाओं के रक्त-मांस-मज्जा से चटकती हुई ऊँची-ऊँची ज्वालाएं।

जैतसी—क्या आपके विचार सारे सामंतों के विचार हैं ?

सब—(खड़े होकर, हाथ जोड़ कर, सिर झुका कर) खम्मा।

मन्त्री—अब तो मुझे इस युद्ध का भविष्य उज्ज्वल और गौरवमय मालूम होता है।

जैतसी—हां, मन्त्री जी, जरा कुमारों को भी तो बुलवाइये। उन्हें पता भी है, उनके काम का फल क्या होगा ? उनके विचार

भी तो मालूम होजाए ? उनके मुँह से तो उस दिन जल्दी में मैं पूरा हाल न सुन सका था।

मन्त्री—(राजकुमारों को दरबार में प्रवेश करते देखकर।) लीजिये, याद करते ही, वे तो आगये।

जैतसी—आओ बेटा, मैं तो तुम लोगों को याद ही कर रहा था। तुम्हारे ही कामों पर विचार हो रहा था। तुम लोग आज-कल अपने मन की बहुत करते हो। बहुत उद्दण्ड हो गये हो ?

जैतू—क्यों बाबा, हम तो आपकी रत्ती रत्ती बात मानते हैं। आपने हमें शिकार खेलना सिखाया और शिकार खेलने की आज्ञा दी, हम शिकार खेलते हैं। अपने राज्य में खेलते हैं। न मिलने पर बाहर भी चले जाते हैं।

लूणकर्ण—हिंसक पशुओं की शिकार खेलते हैं, और समय आ जाय तो हिंसक पशुओं की भी आदतवाले अपने जैसे आदमी की भी खेल लेते हैं।

भीमो—आपने हमें हथियार चलाना सिखाया। हम समय समय पर उनका उपयोग कर लेते हैं। केवल इस भय से कि यदि भूल गये तो फिर आप ही कुलकलंक कुलांगार, कायर आदि आदि शब्दों से झिड़कने लग जाएंगे।

जैतसी—(गम्भीरता में दबी हुई मुसकान से) मन्त्री जी सुनी आपने इन आज्ञाकारियों की बातें। इतना आज्ञाकारी तो इनका बाप भी न था। उसकी रही-सही आज्ञाकारिता की पूर्ति भी तो

इन्हीं को करनी है। ये लोग तो राजसभा को महल ही समझकर बातें करते हैं।

चारण—अन्नदाता, सभा में तो आप चाहे जो कहें, पर इस समय आपके मन में आनन्द सागर उमड़ रहा है, उसका अनुभव किसी निपूते को क्या होगा।

मन्त्री बात तो पते की कही, आपने।

जैतसी—(गंभीर होकर) तुम्हें, बेटा यह भी पता है, तुमने क्या लूटा और किसकी सेना काट डाली है?

जैतू—हां, बाबा, अच्छी तरह मालूम है। यह धन और सेना दिल्ली के सुल्तान की थी। हम जंगल में शिकार खेलने गये थे। रास्ते में वे मिले। उनकी बातों से पता लगा, कि वे स्वयं उस धन को हिन्दू प्रजा से, जज़िया न दे सकने के कारण, लूटकर लाये थे। हमने उन्हें पहिले अपना असली परिचय न दिया। हमारी बातों से जब उन्हें पता लगा कि हम जैसलमेर के किसान हैं, तो उन्होंने हमसे असभ्य व्यवहार किया। उन्होंने हमसे भी जज़िया वसूल किया। उस समय तो हम चुप रहे। उन्होंने हमसे जो कुछ मांगा, हमने दे दिया। रात को फिर सारी कसर निकाल ली।

जैतसी—क्यों मंत्रीजी सुलतान के पत्र में तो इन बातों का ज़िक्र भी नहीं है।

मंत्री—नहीं अन्दाता, पत्र में तो लिखा है कि राजकुमारों ने जानबूझकर लूट मार की।

सीहड़—अच्छा! जानबूझकर ही की। सुलतान को लिख दो, उसके पत्र की एक भी मांग पूरी नहीं की जायगी। अधिक से अधिक इतना हम कर सकते हैं, कि राजकुमार भविष्य में उस जंगल में शिकार खेलने न जाएँ। यदि करेंगे ही तो इतना ही। अधिक नहीं, और लड़ने को हो तो हम सदा ही प्रस्तुत हैं। वह चाहे जब आ जाए।

जैतसी—मन्त्री जी, कुमारों को भी वह पत्र दिखा दीजिये।

(मन्त्री जैतू को वह पत्र देता है, जैतू के साथ उसके दोनों भाई भी पत्र पढ़ते पढ़ते उत्तेजित हो जाते हैं।)

जैतसी—देखा बेटा, समझ गये सुलतान के मन के भाव? अब कहो क्या करें? अब तुम इतने छोटे बच्चे तो हो नहीं, कि तुम्हारी सम्मति की उपेक्षा की जाए।

जैतू—इसमें हमारी सम्मति की आवश्यकता क्या है, बाबा जी? हमें तो आपकी आज्ञा चाहिये। जैसलमेर और जैसलमेर के बाहर से भी हम सैनिक एकत्र कर सकते हैं। यदि आपकी इच्छा हो, कि यहां ठहरकर सुलतान के आक्रमण की प्रतीक्षा न की जाय कुछ आगे बढ़कर अपनी सीमा पर ही उन पर चढ़ाई कर दी जाय, तो हमें इंगित मात्र कर दीजिये और फिर देखिये, कि आपके मार्ग में पड़नेवाले डबरों और नालों को हम अपनी लाशों से पूर देते हैं, या नहीं?

भीरो—सम्मति देने दिवाने के लिए तो पिताजी और मन्त्री जी ही पर्याप्त हैं। माता ने लोरियों में हमें देश और गौरव के नाम पर ही जीना और मरना सिखाया है। सम्मति देने का समय आने में तो अभी बरसों की देर है। आप तो अभी मौजूद हैं। भगवान करे आप अपनी शताब्दी पूरी करें। फिर पिता जी हैं। परमात्मा करे कालचक्र इनके समय धीमी गति से घूमे। फिर जब जैतू भैया की बारी आयगी, हम लोग तब सम्मति देंगे।

लूणकर्ण—बाबासा, आप और मंत्रीजी हमारी परीक्षा तो नहीं ले रहे हैं? आपने समझा होगा, कि कदाचित हम आपका साथ न दें। आप ऐसा न समझिये। हम अपने और उनके मुण्डों से चामुण्डा का खप्पर भरने के लिए हर समय तैयार हैं। हमारी धमनियों में अमरता के एक मात्र धनी, राजपूतों का रक्त प्रवाहित हो रहा है।

जैतू—हमें राजकुमार होने का गौरव होने की अपेक्षा राजपूत सैनिक होने का अधिक गौरव है। हम जसलमेर के राजपूत सैनिक पहिले हैं, और राजकुमार बाद में। बाबाजी आप को यदि हमारी बातों पर अब भी विश्वास न हो तो आप युद्ध का सारा भार हम पर छोड़ दीजिये। और छद्मवेश धारण कर हमारी गति-विधि देखते रहिये। आप देखेंगे कि युद्ध के अंत में, समरभूमि में एक भी जीवित शत्रु नहीं है। हताहत और मरणोन्मुख शत्रुओं से क्षेत्र भरा पड़ा है, या

यह जैसलमेर और इसका दुर्ग श्मशान के रूप में परिणत हो गया है, पर साथ ही इसके प्रत्येक पोल और बारियों के आगे रक्त के कीचड़ में हमारी और शत्रुओं की लाशों के ढेर पड़े हैं।

भीगे बाबासा आप हम पर भरोसा रखिये। हम अब अधिक कुछ नहीं कहना चाहते। हमारे सब के भाव मैं आप को इस कविता द्वारा जना देता हूँ। बस इसे ही आप हमारी ओर से अन्तिम कथन समझिये—

सिंहनी के पूत दूध सिंहनी का पिया सदा,
जानते हैं रिपु को खदड़ना, पछाड़ना।
घूमता निडर सिर तान शत्रुओं के बीच,
झपटना, डपटना, झपेटना दहाड़ना।
हवाई महल बैरियों के जितने हों बने,
एक एक करके निमूलना उजाड़ना।
शत्रुओं से जूझ दहलाना रौंद देना उन्हें,
बत्तीसी उन्होंकी रणभूमि में उखाड़ना।

(चारों ओर से वाह वाह का शब्द होता है।)

कविराजजी—(उपरोक्त कवित्त सुनकर जोश में आ जाते हैं और बोल उठते हैं।)

जूझा जंग में जो जमकर जवाँमरदों सा,
सहज ही अहित-समूहों का झुकाया है।
संगर में देखकर जिसका प्रचंड रूप,
सर्व प्राणहारी महाकाल भी लजाया है।

अट्टहास नाद से सरोष रूप धारकर,
मृत्यु-कामिनी को निज अंग लपटाया है।
ऐसा पूत जिसको सराहें देव स्वर्ग के भी,
धरा पर राजपूत-जाया ही ने जाया है।

(चारों ओर 'महारावल जी की' जय की आवाज़ होती है।)

चारण—प्रबल अग्नि से बढ़ें, समर से पग न हटावें।
अट्टहासिनी अम्ब-पदों पर मुंड चढ़ावें॥
देना तो निज वक्ष शत्रु-असु लेना जानें।
शोण-जलधि में यश-पतंग को खेना जानें॥
यदपि राजलक्ष्मी विमुख हमसे अपनी आज है।
मरी न रजपूती अभी क्षत्रिय क्षत्रिय आज है॥

जब क्रुद्ध नखी रणमत्त हुआ रजपूत का पूत कि जूझे अकेला।
जब शोण विलोचन में उतरा, कि तजे जगती का प्रपंच झमेला॥
घनघोर महारण में यों रमे गतशंक कपीरा रमा अलबेला।
मतिनैन-सुतों के समूह में ज्यों अभिमन्यु अहा कुरुखेत में खेला॥

(चारों ओर से 'महारावल की जय' की आवाज़ होती है, और राजपूत गण अपनी अपनी मूँछों पर हाथ फेरने लगते है।)

मंत्री—तो महाराज की अन्तिम आज्ञा क्या होती है?

जैतसी—मेरी अंतिम आज्ञा और क्या होगी। हमको शत्रुओं से लोहा लेने को पूरी तरह से तैयार हो जाना चाहिये।

(इतना कहकर महारावल जैतसीजी अपने स्थान से उठकर चले जाते हैं। उनके बाद, राजकुमार, मन्त्री और सामंत आदि भी चले जाते हैं।)

दृश्य चौथा

स्थान - महारावल जैतसी का महल।

समय —प्रातःकाल के सात बजे।

(महारावल जैतसी अपनी पूजाशाला में बैठे एक ब्राह्मण से महाभारत की कथा सुन रहे हैं। एक दूत आता है।)

दूत—घणी खम्मा अन्नदाता जी, सुलतान की सेना आगई। यहां से बीस मील पर है। दुपहर तक वे वहीं पड़ाव डाले रहेंगे। यहां आधी रात में आ पहुँचेंगे। कल सवेरे तक यह दुर्ग घिर आयगा।

जैतसी—अच्छा कोई चिंता की बात नहीं। हम भी तैयार हैं। जा, तू शीघ्र ही मंत्री जी, राजकुमारों, और सामंतों को यहीं बुला ला। (ब्राह्मण से) महाराज अब कितनी कथा शेष है

ब्राह्मण—राजाधिराज केवल आधा अध्याय। यह तो अभी मंत्री जी आदि के आने तक पूरा हुआ जाता है।

जैतसी—अच्छा ठीक। प्रारम्भ करिये।

(थोड़ी देर बाद कथा समाप्त हो जाती है। और जैतसी अपनी बैठक में चले जाते हैं। कुछ देर बाद सब निमंत्रित व्यक्ति आजाते हैं।)

जैतसी—मंत्रीजी आपको दूत से सब पता तो लग ही गया होगा।

मंत्री—जी हां, अन्नदाता। अब आज्ञा दीजिये।

जैतसी—(जैतू से) अच्छा बेटा, कल मैंने जो तुम से बातें कहीं थीं, वे तो तुम्हें अच्छी तरह याद होंगी। जाओ अब उन्हीं के अनुसार कामकरो। (जैतू जैतसी के पैर छूकर चला जाता है।) हां मन्त्री जी, जरा रतनू को तो बुलवाइये। (मन्त्री दूत को रतन को बुलाने को भेजता है।) हर एक बुर्ज पर पैंसठ-पैंसठ जवान रख दीजिये। एक हजार सैनिक आवश्यकता के लिए सदा तय्यार रहें। प्राचीर के प्रत्येक छेद पर एक सैनिक रहे। (रतन जी का प्रवेश, रतन जी को देखकर।) बेटा रतनू, तुम देवराज और हमीर तथा एक हजार सैनिक लेकर, इसी समय दुर्ग के बाहर हो जाओ। बाहर तुम्हें जैतू मिलेगा। तुम दोनों मिलकर अपनी कार्यप्रणाली स्थिर कर लेना। मैंने उसे सब समझा दिया है। (रतनसी जैतसी के पैर छूकर चला जाता है। सिर्फ जैतसी और मन्त्री जी रह जाते हैं।)

(दृश्य परिवर्तन—स्थान—यवनसेना की छावनी में मीर महबूबखां का डेरा। समय—सायंकाल के सात बजे। महबूबखां एक सिपाही से बात कर रहा है।)

महबूब—सिपाही भागे क्यों आरहे हैं अनवर ?

अनवर—हुजूर, किलेवालों ने गजब का हमला किया। आज घेरा डाले आठ दिन हो चुके। सात दिन तक तो मामूली तीरंदाजी होती रही। किला ऊंची जमीन पर है। हम लोगों ने ज्योंही चढ़ना चाहा कि ऊपर से बड़े बड़े पत्थर लुढ़का दिये गये। किले में से थोड़े से आदमी निकले मामूली सी

लड़ाई की और फिर चले गये। कैद हम एक को भी न कर सके। आज सुबह करीब पांच सौ जवानों ने हमला किया। शाम के चार बजे तक लड़ाई होती रही। चार बजे एकाएक पीछे से भी करीब एक हजार जवानों ने हमला कर दिया। किले की दीवार पर से तो जो तीरंदाजी और गोलाबारी होती थी वह अलग थी! मैदान में लाशें बिछी पड़ी हैं। घायल बहुत कम हैं। मुर्दों के ढेर लगे हैं। लोगों ने तखमीना लगाया है, कि आज कम से कम हमारे आठ हजार जवान मारे गये हैं।

महबूब—रसद का क्या हाल है?

अनवर—हुजूर छै दिन तक तो साथ की रसद चलती रही। दो दिन से कुछ तो फाके कर रहे हैं, कुछ अधपेट रहते हैं। बहुत कम को भर पेट मिलने पाया है। मंडोर से जो रसद हमारे लए आती थी, वह तो रास्ते में ही लूट ली जाया करती है। ऐसी हालत में भागने के सिवाय और कोई चारा नहीं।

महबूब—भागने के सिवाय चारा नहीं! डरपोक! बुज़दिल! औरतों से बदतर! तुम वहीं मर नहीं सकते थे। भागोगे? जाओगे कहां भागकर? तुम जैसे हिजड़ों को नौकरी कौन देगा? अलीखां, तमाम लश्कर में मुनादी करा दो, कि जो भागेगा, तलवार के घाट उतार दिया जायगा। जाओ जल्दी करो। (अलीखाँ दौड़ता हुआ जाता है)

दृश्य परिवर्तन

(स्थान—जैसलमेर का किला। समय प्रातःकाल आठ बजे। महा-रावल जैतसी पूजाघर के द्वार पर मंत्री से बातें कर रहे हैं)

जैतसी—भागे हुए यवनों ने लौट कर क्या फिर घेरा डाल दिया, मंत्री जी ?

मंत्री—जी हाँ, अन्नदाता। मीर महबूबखाँ नामका एक सेनापति बड़ा वीर है। वह फिर सारी सेना को लौटा लाया है। अब की बार मालूम होता है, वे ज्यादा दिन टिकेंगे।

जैतसी—टिकने दो, कोई चिन्ता नहीं। जैतू और रतनसी को मेरा आशीर्वाद भेजो। उन्हें कहलादो कि उन्होंने अपना काम बहुत अच्छी तरह पूरा किया। ऐसा ही वे सदा करते रहें। आदमी कम हो जायें तो अन्य राजपूत-राज्यों से भर्ती करलें। धन की सहायता यहां से गुप्त रूप से, समय समय पर भिजवा दी जायगी।

(जैतसी पूजाघर में और मन्त्री बाहर, परस्पर अभिवादन करके, चले जाते हैं)

दृश्य पाँचवाँ

स्थान—यवन-छावनी से कुछ मील दूर।

समय—दैनिक युद्ध समाप्त होने के बाद रात के आठ बजे।

(रतनसी अपने कुछ सिपाहियों के साथ आ रहा है। रास्ते में किसी चीज को देखकर घोड़ा ठिठकता है। रतनसी के साथ-साथ सब सिपाही अपने अपने घोड़ों से उतर पड़ते हैं)।

रतनसी—(एक सिपाही से) मशाल जलाओ। देखें यह कौन है ?

(एक सिपाही मशाल जलाता है। मशाल के उजाले में घायल और बेहोश व्यक्ति को पड़ा देखकर रतनसी चौंकता है)।

रतन—अरे, यह तो महबूबखाँ है !

एक सिपाही—हां अन्नदाता, है तो वही।

दूसरा सिपाही—(तलवार खींचकर) अन्नदाता, हुकुम हो तो यहीं......

रतन—बस, अब एक शब्द न निकालो ! तुम क्षत्रिय हो ? लज्जा न आई तुम्हें यह कहते हुए ? चलो पहिले इसे होश में लाओ।

महबूब—(कुछ देर बाद होश में आकर) मैं कहां हूं ? मेरे सिपाहियों का क्या हुआ ? आप लोग कौन हैं ? यह खून कैसा ? मेरी कमर में पट्टा किसने बांधा ?

रतनसी—ये सब राजपूत सैनिक हैं। मेरा नाम रतनसी है। आप यहां अकेले पड़े थे। घायल थे। बेहोश थे। आपकी कमर में भारी घाव था। यह पट्टा हम लोगों ने बांधा है। इसके सिवाय हम कुछ नहीं जानते। अब आपकी तबीयत कैसी है ?

महबूब—अभी तक तो दर्द था। पर अब दर्द की जगह ताज्जुब ने ले ली है।

रतनसी—क्यों ?

महबूब—क्यों काहे की। मैं सोच रहा हूं, कि मैं आपको दाना समझूँ या नादान ?

रतनसी—इसका निर्णय तो आप अपनी छावनी में करते रहियेगा। हमें तो यह बताइये आप यहां कैसे आ गये ?

महबूब—इस रास्ते में हमारी रसद लूट ली जाया करती है। इतने साल हो गये, हम एक दिन भी अपनी रसद, बिना लुटवाये, पूरी पूरी, यहां न ला सके। तब हमने दिल्ली से रसद मंगवाने का इंतज़ाम किया। इसमें खर्चा काफ़ी लगता है। इसी रास्ते से हम पर पीछे से हमले भी हुआ करते हैं। इन्हा बातों का पता लगाने, मैं अपने चन्द सिपाहियों के साथ इधर जा रहा था। रास्ते में कुछ राजपूत हम पर टूट पड़े। हमारे साथी कैद कर लिये गये। मैं घायल होकर वापिस लौट रहा था। इतने में सिर घूमने लगा, फिर मुझे मालूम नहीं क्या हुआ ? गला सूख रहा है। पानी। पानी।।

(एक राजपूत अपनी चमड़े की थैली में से पानी पिलाता है।)

हाँ, अब याद आ रहा है। आप तो रोज़ लड़ाई के वक्त दिखाई देते रहते हैं।

एक सिपाही—ये हमारे महारावल जी के छोटे पुत्र हैं। इनका वीरता तो आप रोज ही देखते हैं।

महबूब— हां ठाकुर साहब, देखता हूं; और, आज मैं यह राज़ भी आप लोगों पर ज़ाहिर कर देना चाहता हूं, कि मैं इनकी बहादुरी के साथ साथ इनकी ज़ात पर भी फ़िदा हो चुका हूं। क्यों, कुमार साहब, आप जादू जानते हैं, या खुदा पाक ने आप को अपना नूर इतना ज्यादा अता फ़रमाया है ? खुदा मेरे, कितना अच्छा होता, अगर मैं इनका भाई होता, या ये मेरे भाई होते। यह शुजाअत। यह दिलेरी ! यह फ़राखदिली ! यह इन्सानियत।

रतनसी—मैं तो एक साधारण सा राजपूत हूं। मैं मनुष्य पहिले हूं, बाद में कुछ और। मैंने तो आज आप के प्रति—एक मनुष्य के प्रति—अपना कर्तव्य ही पालन किया है। और उस भगवान की ही कृपा है, जो उसने हमको आज इस जगह इस ढंग से मिला दिया। अब यह हमारी बुद्धिमानी पर निर्भर है, कि हम अपने इस सम्बन्ध को दिन-दिन बढ़ाकर आदर्श बना दें।

महबूब—क्या यह जानते हुए भी कि मैं आपका दुश्मन—एक मुसलमान हूँ। यह मुमकिन है ?

रतनसी—हां हां। यदि हम अपनी मनुष्यता को समझ सकें।

महबूब—तो इस जंग के बाद मैं सुलतान की नौकरी छोड़ दूँगा। फिर आप के पास आजाऊंगा।

रतनसी—क्यों नौकरी छोड़ने की क्या आवश्यकता है? आप सुलतान के नौकर रह कर भी, यवन सेना के सेनापति रह कर भी, लड़ाई में हमारे दुश्मन रह कर भी, हमारे दोस्त—हमारे भाई रह सकते हैं। हम राजपूत तो ऐसा कर सकते हैं। किया है, करते हैं, और करेंगे भी।

महबूब—अच्छा तो मेरे बहादुर भाई, अब मुझे बिदा दो। कल मैं फिर हाजिर होऊंगा।

रतनसी—यह सामने जो खेजड़े का पेड़ दिखता है न, हम यहीं मिला करेंगे। (अपने सिपाहियों की ओर देखकर) हाँ, कुछ जवान अभी इनको घोड़े पर चढ़ाकर इनके लश्कर में छोड़ आवें।

(महबूब और रतनसी दोनों गले मिलते हैं। कुछ सिपाही महबूब को घोड़े पर सवार करा कर ले जाते हैं। रतनसी अपने साथियों के साथ अपने डेरे की ओर चला जाता है।)

दृश्य परिवर्तन। स्थान—जैसलमेर का राजमहल। समय—रात के बारह बजे।

(जैतसी रोगशय्या पर पड़े हैं। आसपास सगे-सम्बन्धी, सामन्त, पुत्र-पौत्र, मंत्री नौकर-चाकर एकत्र हैं।)

जैतसी—(धीमी आवाज़ से) रतनसी आगया, मूलराज?

मूलराज—हाँ, पिता जी, भैया आगया।

जैतसी—मंत्री जी, सब सरदार और सामंत भी आगये ?

मंत्री—हाँ, अन्दाता।

जैतसी—रतनसी, बेटा, बाहर के युद्ध का क्या हाल है ? जैतू का क्या हाल है ? वह घबड़ाया तो नहीं ? उसका उत्साह वैसा ही है न ?

रतनसी—बाहर का सब कार्य आपकी आज्ञानुसार हो रहा है। जैतू अपना कार्य बराबर करता है। घबड़ाना तो दूर, उसका उत्साह तो दिन दिन बढ़ता ही है। उसने तो आपके दर्शन के लिये अभी बड़ा हठ किया था, पर स्थिति की गंभीरता बतलाकर मैंने ही उसे रोक दिया।

जैतसी—ठीक किया। हां, महबूबखां से तुम्हारी दोस्ती अभी वैसी ही चली जारही है ? तुम लोग रोज मिलते हो ? बेटा तुम कुछ भी कहो, मुझे तो उसकी मित्रता पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता। यवन का बेटा यवन ही होता है। सांप का बेटा सांप ही होगा—बकरी नहीं।

रतनसी—पिता जी, आप व्यर्थ का सन्देह न करिये। उसकी मेरी मित्रता हुए आज छै बरस हो गये। इन छै बरसों में मैंने उसे कई बार परख लिया है। मैंने उसमें मनुष्यता का भाग अधिक पाया है। आप उसकी ओर से उतने ही निश्चिन्त रहिये, जितने मेरी ओर से रहते हैं। मैं उसका उत्तरदायित्व अपने पर लेता हूँ।

जैतसी—अच्छा, तुम जानो और तुम्हारा काम। हाँ, अब मेरी बात सुनो। आज दुर्ग घिरे आठ साल हो गये। अपनी बुद्धि और साधन के अनुसार मैं युद्ध का संचालन करता रहा। मुझे रोगी रहते भी आज एक महीना हो गया। वृद्धावस्था के कारण शरीर भी जर्जर हो चुका। मुझे अब यह विश्वास हो गया है, कि मैं कुछ ही घंटों का अतिथि हूँ। इसीलिए मैंने आज सब लोगों को बुला भेजा है। विचलित न होकर, मेरी बातें शांति से सुन लो! (खांसते हुए पानी मांगता है। मूलराज पानी पिलाता है।) सबसे पहिली बात, जो मैं कहना चाहता हूँ, यह है, कि मेरे बाद मूलराज गद्दी का अधिकारी होगा। पुरोहित जी, यह लीजिये मेरी पगड़ी और मेरी तलवार बाँध दीजिये, और तिलक कर दीजिय। (पुरोहित मूलराज के सिर पर पगड़ी पहनाकर कमर में तलवार बांध कर सिर पर अपने चीरे हुए अंगूठे के रक्त से तिलक कर देता है। फिर पुरोहित मूलराज को सामने लगी हुई गाड़ी पर बैठा देता है, और सब नियमानुसार मुजरा करते हैं।) दूसरी बात, जो मैं कहना चाहता हूँ, वह यह है कि जब तक जैसलमेर में एक भी राजपूत रहे, युद्ध किया जाय। सन्धि न की जाय। किसी भी दशा में न की जाय। मुझे आज इस बात का गौरव है, कि मैं बराबर आठ साल तक शत्रुओं से मोर्चा लेता रहा। मैं अपना कर्तव्य कर चुका। आशा है, आप लोग अपना कर्तव्य न भूलेंगे। अच्छा, अब अन्तिम विदा और अपने अपराधों के लिये क्षमा प्रार्थना। अब सब बाहर चले जाएँ।

अपना अपना काम समझ लें। पुरोहित जी, आप अब गीता का पाठ प्रारंभ करिये।

(सब शिर झुकाकर आंसू पोंछते हुए कमरे के बाहर चले जाते हैं। केवल मूलराज रह जाता है। पुरोहित गीता–पाठ प्रारम्भ कर देते हैं।)

दृश्य छठा

स्थान—खेजड़े का पेड़।

समय—प्रात:काल आठ बजे।

(रतनसी और महबूबखां बैठे बातें कर रहे हैं)

महबूब—कुमार तुम बड़े बेरहम हो।

रतनसी—क्यों जी मैंने क्या बेरहमी की ?

महबूब—कल रात के नौ बजे तक यहां मैं तुम्हारा इंतज़ार करता रहा, पर तुम न आये तो न आये।

रतनसी—कल हमारे अन्नदाता—मेरे पिता जी ने बुला भेजा था। वे बीमार थे। कल अन्तिम बार उनके दर्शन करने गया था।

महबूब—अब उनकी तबीअत कैसी है ?

रतनसी—पुरोहित जी से गीता सुनने लग गये थे।

महबूब—क्या मुझे उनके दीदार नसीब नहीं हो सकते ?

रतनसी—हाँ हो तो सकते हैं। वे कल तुम्हारे लिए भी पूछताछ कर रहे थे। उन्हें तुम्हारी मित्रता पर संदेह था। मैंने उन्हें तुम्हारी ओर से संतुष्ट कर दिया।

महबूब—तो आज ले चलोगे ?

रतनसी—अवश्य। पर आँख पर पट्टी बँधवानी पड़ेगी।

महबूब—अरे मेरे खुदा, एक नहीं दस दम, और खूब कस कस कर।

रतनसी—अच्छा तो आज रात के आठ बजे तैयार रहना।

(ठीक उसी समय किले पर से तोपों की आवाज़ आती है। उसे सुनकर रतनसी चौंकता है, निष्प्रभ हो जाता है, और उसकी आँखों से दो चार बूँद आँसू टपकते हैं। पर जल्दी से पोंछकर वह अपने को सँभाल लेता है।)

महबूब—क्यों क्या हुआ? यह बेचनी क्यों?

रतनसी—अब मेरे पिता जी संसार में नहीं रहे।

महबूब—(आश्चर्य से) एँ। तो ये तोपें क्यों छोड़ी जारही हैं, और बाजे क्यों बजाये जा रहे हैं?

रतनसी—मेरे भाई,—मूलराज का राज्याभिषेक हो रहा है।

(एक राजपूत सिपाही का प्रवेश)

सिपाही—अन्नदाता, पधारिये। सेना से नये अन्नदाता के प्रति राजभक्ति की शपथ लीजिये।

महबूब—कुमार पांच मिनट और ठहरिये। एक जरूरी बात कहनी है।

रतनसी—हां हां, कहो।

महबूब—सुलतान को पता लग गया है, कि हममें दोस्ती हो गई है, और हम दोनों रोज मिला करते हैं। चुगलखोरों ने तो यहाँ तक कहा है, कि इन्हीं दोस्तों के सबब किला अभी तक न फतह हो सका हालांकि खुदा जानता है मैंने जंग करने में अपनी ओर से ज़रा भी कमी नहीं की।

रतनसी—तो क्या हमारी दोस्ती न रहेगी ?

महबूब—खुदा के वास्ते मेरे दोस्त यह कलाम मत निकालो। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ, कि मैं कल ज़ोर-शोर से क़िले पर हमला करूंगा। अगर कल मारा जाऊँ तो किले में अपने बाग़ के एक कोने में मुझे दफना देना, और अपने हाथ से मिट्टी डालना। मानोगे ?

रतनसी—नहीं क्यों ? भगवान न करे यदि ऐसा हुआ ही तो तुम्हारी कब्र पर एक बढ़िया समाधि बनाऊँगा। अच्छा विदा। आओ गले तो मिल लें।

(दोनों गले मिलकर चले जाते हैं)



दृश्य सातवाँ

स्थान—जैसलमेर का राजमहल।

समय—दुपहर के बारह बजे।

(महारावल मूलराज का दरबार लगा हुआ है। सब प्रमुख सामन्त उपस्थित हैं।)

मूलराज—मंत्री जी, पिता जी की मृत्यु के साथ इस युद्ध का पूर्वार्द्ध तो समाप्त हुआ, और गौरव-पूर्ण ढंग से हुआ। अब उत्तरार्ध का प्रारम्भ है। देखें यह कैसा होता है।

मंत्री—अन्नदाता, भगवान की कृपा से सब उत्तम ही होगा। आज प्रातःकाल से शत्रुओं ने नवीन उत्साह से आक्रमण करना प्रारम्भ किया। अभी तक तीन आक्रमण तो हो चुके हैं। उनके कई हजार आदमी मारे गये हैं। आज हम लोगों ने प्राचीर पर से बड़े बड़े पत्थर लुढ़काये, परिणाम यह हुआ, कि एक भी शत्रु भीतर न घुसने पाया। जो मरने से बचा, उसे अपने हाथ-पैरों को तिलांजलि देनी पड़ी।

सीहड़—यदि उन लोगों ने नवीन उत्साह से लड़ना प्रारंभ किया है, तो हम लोगों का भी उत्साह तो पुराना नहीं होगया। हम भी उतने ही उत्साह से लड़ते रहेंगे।

जैचंद—बड़े महारावल जी की अन्तिम आज्ञा का हम अक्षरशः पालन करेंगे। मरते मर जायेंगे, पर हथियार न रखेंगे।

सीहब—मैंने तो गोलंदाजों को कह दिया है, कि शत्रु-सेना के प्राचीर के निकट आते ही आग बरसाना आरम्भ कर दिया जाय। उनकी तोपों से हमारी कुछ भी हानि न हुई। हमारी तोपों से उन्हें पर्याप्त घाटा उठाना पड़ा है।

मूलराज—मैं जय-पराजय की दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार ही नहीं करता। मैं तो यह चाहता हूँ, कि युद्ध में हमारी जय हो या पराजय, पर इतिहास में अमर रहनेवाले गौरव के एकाधिकारी हमी रहें।

आसकर्ण—अन्नदाता, आप इसकी तो किंचिन्मात्र भी चिन्ता न करिये। हम लोग समय पड़ने पर अपने गौरव की रक्षा करना भली भाँति जानते हैं।

मूलराज—ठीक है। आप लोगों से ऐसी ही आशा है। अब समय अधिक हो गया है। सब अपने अपने मोरचे पर चले जाएँ, और आज का दरबार समाप्त हो।

(मूलराज महल में, और सब बाहर चले जाते हैं।)

दृश्य-परिवर्तन

(स्थान—यवनों की छावनी। समय—रात के दस बजे। महबूब और करीमखां बातें कर रहे हैं।)

करीमखां—हुजूर, आज के कुल हमलों में नौ हजार आदमी मारे गये, और हम लोगों के पास मैदान छोड़ भागने के सिवाय कोई चारा न रहा। हुजूर, इंसान इंसान से लड़ सकता है, आग और पत्थर से नहीं।

महबूब—ठीक है। पर जहाँपनाह का हुक्म तो यही है, कि या तो किला फतह करो या वहीं मर मिटो। भागकर आखिर जाएंगे कहां? रास्ते में डाकू हमें छोड़ देंगे? भगोड़ों की तो सभी जगह मिट्टी खराब होती है। इसलिए मैं तो सब को इकट्ठा कर के फिर से घेरा डाल दूँगा। हां, यह अलबत्ता करूँगा, कि अब हमला करने के पहिले अच्छी तरह सोच-विचार लूँगा। और अबकी बार मैं इस बात की भी पूरी पूरी कोशिश करूंगा, कि किलेवालों को बाहर से किसी भी तरह की मदद न मिले। फिर मैं भी देख लूंगा कि ये राजपूत कितने दिनों टिकते हैं। पर हाँ, यह मुझे मानना पड़ता है कि ये लोग बला के लड़ने वाले होते हैं।

करीम—हुजूर नौ साल के करीब तो होगये। इन लोगों का हौसला तो जरा भी कम न हुआ।

महबूब—अच्छा जाओ, सब अफसरों को मेरे पास एक बार बुला तो लाओ।

(करीम चला जाता है)

दृश्य-परिवर्तन

(स्थान—दुर्ग की प्राचीर के पास का मार्ग। समय—प्रातःकाल के पाँच बजे। महारावल मूलराज सीहड़ तथा मंत्रीजी। निरीक्षण करते हुए घूम रहे हैं।)

मंत्री—अन्नदाता, अब बाहर से रसद आना तो कई दिनों से बंद है। ये लक्षण अच्छे नहीं हैं। इस तरह कितने दिन

चलेगा ? कुमार जैतू के मारे जाने से, रसद और धन तथा आद-मियों का आना बिलकुल बंद होगया है। रतनसी के भी आदमी बहुत कम होगये हैं। वे भी अधिक दिन तक नहीं ठहर सकेंगे और महबूब ने अब की बार बहुत भारी घेरा डाला है।

मूलराज—पिता जी के देहांत को अब-तक डेढ़ साल तो होगया होगा ?

सीहक—अन्दाता, डेढ़ साल से भी अधिक हो गया है। एक साल और ग्यारह महीने हो चुके हैं।

मूलराज—अब कितने दिन और टिका जा सकता है ?

मंत्री—केवल एक महीने तक, अन्दाता।

मूलराज—हूं। (कुछ देर सोचने के बाद।) अच्छा तो अब रतनसी को उनकी सेना सहित भीतर बुला लो।

मंत्री—जो हुकुम अन्दाता।

सीहक—अन्दाता, अगर आप आज्ञा दें तो मुझे एक उपाय सूझा है, उसे करूं। आदमी एक भी नहीं मरेगा, और व्यय तो बहुत ही कम होगा। पर परिणाम यह होगा, कि शत्रु-सेना हताश हो जायगी, और घेरा उठा कर चल देगी।

मूलराज—अगर ऐसा उपाय है तो अवश्य करिये। सोना और सुगंध। सांप मर जाय और लाठी भी न टूटे।

मंत्री—पर मालूम तो पड़े, आप क्या करेंगे।

सीहक—अभी नहीं। समय आने पर सब पता लग जायगा।

दृश्य-परिवर्तन

(स्थान-महबूब का खेमा। समय सायंकाल के आठ बजे। महबूब और करीमखां बात कर रहे हैं।)

महबूब—करीम, आज लड़ाई का कैसा रंग-ढंग रहा?

करीम—हुजूर चाहे जो हो। अब तो घेरा उठाकर दिल्ली चल देने में ही खैरियत है। अभी ये काफिर कितने दिन डटे रहेंगे। हुजूर तो फरमा रहे थे, कि ये जल्दी ही भूखे मरकर हार मान लेंगे। पर इनके भूखों मरने के तो कोई आसार नज़र नहीं आते। बल्कि ज़ाहिर तो यह होता है कि ये अभी दो चार साल और जमे रहेंगे।

महबूब—यह तो कहो, कि आज ऐसी कौनसी नई बात हुई जिससे तुम इतने पस्त हो चुके हो? इस वक्त मैंने जो घेरा डाला है, उसमें से आदमी तो क्या परिन्दे का बच्चा भी आ-जा नहीं सकता।

करीम—मुमकिन है, हुजूर, कि परिन्दे का बच्चा भी न आ-जा सके। पर दूध तो न जाने किस रास्ते से क़िले में पहुँच कर उनके पेट में पहुँच जाता है। और जब तक इन बला के फ़र्जन्दों को एक एक सेर दूध भी मिलता रहेगा तबतक ये आदमियों से तो क्या, फ़रिश्तों से भी पस्त न होंगे।

महबूब—पर यह तो कहो, कि तुम्हें यह कैसे पता लगा कि क़िलेवाले दूध पीते हैं।

करीम—हुजूर, आज क़िले की कई नालियों में से दूध बह रहा था।

महबूब—सच है।

करीम—हुजूर, इस गुलाम पर यक़ीन न हो तो, चाहे जिस को पूछ लीजिये। यह न समझिये, हुजूर, कि बन्दा जंग में मरने से डरता है। इन सब बातों से मतलब मेरा सिर्फ यह है; कि खुदा के बन्दों का फ़िजूल ही खून न बहे।

महबूब—अच्छा तो सुबह चार बजे दिल्ली की ओर कूच करने की मुनादी करवादो।

करीम—जो हुकुम।

(महबूब डेरे में और करीम लश्कर में चला आता है)

दृश्य-परिवर्तन

(स्थान—दुर्ग के नीचे का मैदान। समय—रात के बारह बजे। भीमदे अकेला बड़बड़ा रहा है।)

भीमदे—प्रतिशोध! प्रतिशोध!! प्रतिशोध!!! हृदय में आग धधक रही है। प्रतिशोध की ज्वाला। साधारण नहीं भयंकर। इसमें भस्म होगा रतनसी। वह गोली मेरी थी। मुझे दहेज में मिली थी। मैं उसके बिना रह नहीं सकता। इस दुष्ट मंत्री की बातों में आकर रतनसी ने उसे सैनिकों के लिए बाटियाँ तैयार करने के काम में लगा दिया। मेरी एक भी न सुनी। सारा रोना पीटना व्यर्थ हुआ। यदि उसे न भेजता तो क्या काम रुक जाता? अच्छा पर मैं भी बदला लूंगा ऐसे न छोड़ूँगा।

ऐसा बदला लूँगा कि सब याद करेंगे। मुझे ज़रा भी चिन्ता नहीं, कि जैसलमेर का क्या होगा? इस समस्त राजपूत जाति का नाश कल होता हो तो आज हो, और आज होता हो तो अभी। बस, आज वाली बात ही महबूब से कह देना बस होगा। फिर देखो क्या होता है, और फिर चुपके से आकर, मूलराज और रतनसी को भिड़ाऊँगा। यदि रंग चढ़ गया तो दोनों भाई आपस में ही ढेर हो जाएँगे। हां, तो अब चलूँ।

(जाता है)

दृश्य-परिवर्तन

(स्थान—दुर्ग से दस मील दूर यवन-सेना-वास। समय—दोपहर के दो बजे। महबूब और उसके साथी दूसरे अफ़सर नमाज़ पढ़ कर उठे ही हैं। एक सिपाही का प्रवेश)

सिपाही—हुज़ूर, एक राजपूत घुड़सवार घोड़ा दौड़ाता हुआ आया है। पसीने में तर-बतर है। हुज़ूर की ख़िदमत में हाज़िर होना चाहता है।

महबूब—(सोच कर) राजपूत घुड़सवार! अच्छा आने दो। (सिपाही जाता है।)

महबूब—क्या मतलब हो सकता है, करीम?

करीम—कुछ समझ में नहीं आता, हुज़ूर।

(सिपाही के साथ भीमदे का प्रवेश। भीमदे के पीछे सिपाही सावधानी से खड़ा रहता है।)

महबूब—क्या, तुम्हीं घोड़ा दौड़ाते हुए आये हो?

भीमदे—जी हां।

महबूब—कहो क्या काम है ?

भीमदे—मैं आप से पूछता हूं, कि आप भागे क्यों जा रहे हैं ?

महबूब—लड़ाई में तो कभी कभी भागना पड़ता ही है।

करीम—हुजूर, इसकी बातों में आकर कहीं फिर से लौट न पड़ियेगा। (भीमदे से) भाई तुम राजपूत हो। तुम भागना क्या जानो। भागना भी एक इल्म है। हर एक इसे सीख नहीं सकता। (महबूब से) हुजूर, होशियार।

महबूब—(भीमदे से) पर इस भागने का यह मतलब नहीं, कि हम फिर कभी आएंगे ही नहीं। अब की बार खुद जहांपनाह तशरीफ़ लाएंगे।

भीमदे—पर, जहांपनाह की आवश्यकता ही क्या है ?

महबूब—मुझे तो यक़ीन हो गया, कि जैसलमेर का क़िला फतह करना मेरी ताकत के बाहर है।

भीमदे—बस, कल नालियों में से दूध बहता देख कर ही हिम्मत हार गये।

महबूब—जिस क़िले में बहाने को इतना दूध हो वह न जाने कितने दिन मुकाबला कर सकता है।

भीमदे—और यदि वह असली न हुआ ?

महबूब—इसका मतलब ?

भीमदे—अब भी न समझे ? अच्छा सुनो। जिस दूध को

आपके लश्कर के लोगों ने असली दूध समझ लिया था, वह आदमियों के पीने का दूध नहीं था।

महबूब—तो क्या था?

भीमदे—मोतियों का चूरा मिला हुआ सुअरियों का दूध।

महबूब - ऐं! सच?

भीमदे—हां सच।

महबूब—सुबूत?

भीमदे—अपने भाई फ़ीरोज़ को बुलवाइये।

महबूब—क्यों?

भीमदे—क्यों काहे को। बुलवाइये तो। (फ़ीरोज़ का प्रवेश। उसे आता देखकर।) लो, वे खुद ही आ गये। क्यों, खां साहिब आप आज सुबह क़िले में तशरीफ़ ले गये थे?

फ़ीरोज़—हां।

महबूब—मुझ से बिना पूछे?

फ़ीरोज़ -पूछता किससे? आप तो आगे चले आये थे। और बुलाया था, आपके पगड़ी बदल भाई रतनसी ने। लाचार होकर जाना पड़ा।

महबूब—फिर वहाँ क्या किया?

फ़ीरोज़—और क्या करता। कुछ इधर उधर की बातें की। घूमा फिरा। मेरी खूब खातिर की गई।

भीमदे—अब ज़रा मेरी बातों का जवाब दीजिये।

फ़ीरोज़—पूछिये।

भीमदे—आपने वहां और कितने आदमियों को अपने

जैसा खाना खाते देखा? कितने आदमियों को दूध पीते देखा? कितने आदमियों को खुशहाल देखा? क्या सबके चेहरों पर हवाइयाँ उड़ती नहीं देखीं? (फ़ीरोज़ के चेहरे पर हिचकिचाहट देख कर।) देखिये, इनकी हिचक ही मेरी सचाई का सबसे बड़ा सुबूत है। बस, मेरा काम तो मैं कर चुका। अब आप जानिये और आपका काम।

(सब सन्नाटे में आ जाते हैं)

महबूब—अच्छा, तो फ़ीरोज़ से मैं ज़रा मशविरा कर लूँ। अभी आप सब अपने-अपने खेमों में ठहरिये। फिर बुला लूंगा। (भीमदे से।) अच्छा मेरे बहादुर दोस्त, तुम भी बाहर इंतज़ार करो।

(महबूब और फ़ीरोज़ के सिवाय सब बाहर चले जाते हैं।)

महबूब—फ़ीरोज़, भाई तुमने यह क्या किया?

फ़ीरोज़—भैया एक पापी सारी नाव को ले डूबता है। आप और मैं कहाँ-कहाँ रोकेंगे। ख़ुदा को ही मंज़ूर है, कि राजपूत क़ौम, अपने में बेमिसाल-क़ुर्बानी, जवाँमर्दी, और दिलेराना जज़बात रखते हुए भी योंही ज़लील होती रहे। अगर ऐसा न होता तो आज यह हिन्दोस्तान हमारे क़दमों पर न होता। मुसलमानों ने हिन्दोस्तान में सैकड़ों लड़ाइयाँ लड़ीं, और बहुत बार फ़तहयाब हुए। और हारे भी। पर, एक लड़ाई तो बताइये, जिसमें, हमारे किसी घर के भेदू के राज़ खोलने से हम हारे हों और ये राजपूत जब भी हारे हैं, तब अपने ही घर के

भेदुओं से। ये खुदक़िस्मत हैं इसलिए कि ये बहादुर हैं, इनके बच्चे और इनकी औरतें भी। ये बदक़िस्मत हैं, इसलिए कि इन में घर में भेदू भरे पड़े हैं। खुदा की मर्ज़ी है, कि इनका नाश हो। हमें उसके आगे सिर झुकाना चाहिये।

(दोनों सिर नीचा करके खड़े रहते हैं। कुछ देर बाद चले जाते हैं।)

दृश्य—९ वाँ

स्थान—जैसलमेर का दुर्ग।

समय—दिन के ग्यारह बजे।

(महारावल मूलराज का दरबार लगा हुआ है। सब सामंत आदि उपस्थित हैं। सब गहरी चिंता में हैं।)

मूलराज—मंत्री जी, अब तो बड़ी कठिन परिस्थति उत्पन्न हो गई है। शत्रुओं ने फिर घेरा डाल दिया है। वे तो चले गये थे। पर, न जाने कैसे फिर आगये।

मंत्री—अन्नदाता, अब तो रसद की जो हालत है, वह आपसे भी छिपी नहीं है। और सब सरदार लोग जानते हैं।

मूलराज—अब कितने दिन काम चल सकता है ?

मंत्री—अधिक से अधिक दो दिन।

सीहड़—अन्नदाता, मैंने तो जो कहा था उसे पूरा कर दिखाया। एक बार तो शत्रु डेरा-डंडा उठाकर, एक पड़ाव तक, चले ही गये। अगर हमें एक महीने का समय मिल जाता तो, फिर इतना प्रबन्ध कर देता, कि आगामी दस साल और लड़ लेते। आज दस साल पूरे हो चुके इस लड़ाई को प्रारम्भ हुए। संसार में कहीं भी ऐसा भीषण घेरा न डाला गया होगा।

राहब—और शत्रुओं को ऐसा छकाया भी न होगा।

मंत्री—मुझे तो आश्चर्य होता है, कि ये लोग इतनी जल्दी आ कैसे गये ?

मूलराज—हाँ मेरे भी मन में यही प्रश्न बारबार उठता है।

भीमदे—अन्नदाता, अपराध क्षमा करें तो एक बात कहूँ ?

मूलराज—हाँ हाँ, कहो। निर्भय होकर कहो।

भीमदे—अन्नदाता, न तो कुँवर रतनसी महबूब के भाई को दुर्ग में बुलाते, और न यह सारी विपत्ति आती।

मूलराज—मन्त्री जी, भाई को तो बुलवाइये।

मन्त्री—अन्नदाता, लीजिये, वे तो आ ही गये।

(रतनसी का प्रवेश)

मूलराज—(क्रोध से) भाई आज तुमने हमारा—सब का सर्वनाश उपस्थित कर दिया। न तुम दुर्ग में फ़ीरोज़ को बुलाते, और न अपना भेद उन पर प्रगट होता। फ़ीरोज़ ने हमारा सारा भेद अपने भाई से कह दिया। परिणाम यह हुआ, कि दुर्ग फिर से घेर लिया गया। महबूब कितना ही भला व्यक्ति हो, पर उसकी मित्रता का परिणाम हमारे राज्य और हमारी समस्त राजपूत जाति के लिये महा अनिष्टकर ही हुआ। इस सारे सर्वनाश की जड़ तुम हो। जी चाहता है................।

रतनसी—भैया, आप मुझे व्यर्थ ही दोष दे रहे हैं। मैंने फ़ीरोज़ को महल के बाहर के कमरे में ठहराया था। तमाम समय मैं उस के साथ रहा, और उसे नगर के बहुत थोड़े से भाग में ही घुमाया।

मूलराज—इन बातों का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। पिताजी ने कहा, मैंने कहा; सब सरदारों ने कहा, कि महबूब से सम्बन्ध न बढ़ाओ। पर तुम ने न माना। जी चाहता है; तुम्हें मृत्यु का दंड दिया जाए। (तलवार की मूठ पकड़ता है)

रतनसी—(घुटनों के बल बैठ कर) भैया, यदि आप को; इसी से सन्तोष होता है, तो लीजिये मेरा सिर तय्यार है।

(दरबान का प्रवेश)

दरबान—अन्दाता, माँ जी साहिब ने कहलाया है, कि आपकी तलवार भाई के रक्त से न रँगी जानी चाहिये। क्रोध को शान्त करिये।

मूलराज—(तलवार की मूठ पर के हाथ हटाकर) अच्छा जाओ।

(दरबान जाता है)

मन्त्री—अब तो हमें यह विचार करना चाहिये, कि आगे क्या किया जाय ?

मूलराज—तो इन्हीं से पूछिये।

रतनसी किसी के भी अपराध से यह घड़ी उपस्थित हुई हो। करना हमें वही चाहिये, जो ऐसे समय हमारे पूर्वज किया करते थे। अब समय आगया है, कि हम जौहर का पावन अनुष्ठान करें। हम दस साल तक डटे रहे। सहस्रों शत्रुओं को हम ने यम-सदन भेज दिया। पर विपक्षियों की सैन्य संख्या अधिक है। हमारे पास फौज नहीं है। और बाहर से आने का मार्ग तो बिलकुल ही बन्द है। यदि हम जौहर न करेंगे, तो

परिणाम यह होगा, कि हमारे देखते देखते शत्रु हमारे दुर्ग पर अधिकार कर लेंगे। हमारे देवस्थानों को अपवित्र कर डालेंगे। हमारी माँ बहिनों की अप्रतिष्ठा करेंगे। इसलिए मुझे जौहर-व्रत के सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं दीखता। और यदि मेरी किसी भूल के परिणाम में आज यह प्रसंग उपस्थित हो गया है, तो, मैं कल, अपनी तलवार से डेढ़ सौ शत्रुओं को मारकर प्रायश्चित्त करूंगा।

मूलराज—मेरे भाई के योग्य तो यही बात है।

रतनसी—तो क्या, भैया, आपने यह समझ लिया था, कि मैं राजपूत धर्म को ही तिलांजलि दे चुका हूं।

मूलराज—नहीं पर मैं चाहता था, कि तुम से यह भूल न होती तो अच्छा था।

रतनसी—भैया, मेरा मन कह रहा है, कि यह मेरी भूल का परिणाम नहीं है। समय आने पर भगवान सत्य प्रगट कर देंगे।

मूलराज—अच्छा, अब छोड़ो इस झगड़े को। काम की बातें होनी चाहिये।

मन्त्री—अन्नदाता, अब आप जैसी आज्ञा दें, सब प्रबन्ध किया जाय।

मूलराज—सब से पहिले, तो सब स्त्रियाँ चिता-रोहण करें। बड़ी चिता राजप्रासाद में बनाई जाये। और एक एक चिता चारों दिशाओं में। प्रातःकाल पांच बजे—सूर्योदय के पहले, चिताएं

प्रज्वलित करदी जाएँ। दुर्ग के सिंह-द्वार पर मैं एक हज़ार सैनिकों के साथ रहूँगा। भाई रतनसी पांच सौ आदमियों के साथ पश्चिमी द्वार पर।

रतनसी—नहीं भैया मैं तो आप के साथ ही रहूँगा।

मूलराज - क्यों?

रतनसी—मेरी इच्छा।

मूलराज—(मुसकराकर) अच्छा। अन्य तीन द्वारों पर पाँच पाँच सौ सैनिकों के साथ एक एक सामंत। शेष प्रत्येक बारी पर सौ सौ सैनिक। देवी द्वारे पर पाँच सौ सैनिक। जब तक जम कर लड़ सकें जम कर लड़ें, नहीं तो जिसे जैसा अवसर मिले अपंग व्यक्ति अपने अपने घरों के ऊपर से पत्थर फेंक कर शत्रुओं को मारें, तेल में भिगोई हुई कपड़ों की गेंद गला-गलाकर डालें जब शत्रुओं को मकानों में घुसते देखें तो आग जगा दें। बारूद हो तो मकानों को बारूद से ही उड़ादें। जिन के घरों में ईंधन हो, वे ईंधन से ही अपने घर भस्म कर दें। धान तो किसी के घर में होगा ही नहीं यदि हो भी तो, वे या तो उसका उपयोग करलें, या नष्ट कर दें। शत्रुओं के लिये न छोड़ें। रत्न, मोती और जवाहिरात पीस कर धूल में मिला दिये जायँ। सोने चाँदी के गहने स्त्रियां पहन लें, ताकि वे चिता में ही गल जायँ। ऐसा महानाश का दृश्य उपस्थित कर दिया जाय, कि शत्रुओं को जीवनोपयोगी एक भी वस्तु न मिले। खाने को भोजन न मिले। पीने को पानी न मिले। मिले तो विषैला और

मिट्टी मिला हुआ। रहने को स्थान न मिले। वे जैसलमेर के खंडहरों पर राज्य करें। समझ गये।

(सब खड़े हो कर 'महारावल मूलराज की जय' बोलते हैं)

दृश्य-परिवर्तन।

स्थान—दुर्ग में एक मार्ग।

समय—प्रातः काल के साढ़े तीन बजे।

(चारण राजपूत और नगरवासियों की एक टोली गाती आ रही है।)

चारण—*जौहर की, अब सब उठो, करो तैयारी।*

सब—*केसरिया पहनो समर-मत्त नर-नारी॥*

चारण—*संसार समूचा सिहर, उठे सकुचावे।*

धरती का लरजे हिया; व्योम हिल जावे॥

बेचारा सागर-तपन, जलधि लहरावे।

मरु कण कण चिनगी बनें, दसों दिशि छावे॥

बलिदानों के तुम खरे, अमर अधिकारी।

सब—*केसरिया पहनों समर-मत्त नर-नारी॥*

चारण—*म्यानों को फेंको दूर, खींच तलवारें।*

बढ़ चलो युद्ध में, करो, सिंह-ललकारें॥

रिपु रोएं मलकर हाथ, लड़ें मरु मारें।

बह जाएं चारों ओर, रक्त की धारें॥

जग में हैं हम-सा कौन, कहो बलधारी ।

सब—केसरिया पहनो समर-मत्त नर-नारी ॥

(गाते गाते चले जाते हैं)

दृश्य परिवर्तन ।

स्थान—वही ।

समय—वही ।

(सामने की दिशा से कुछ चारणियाँ गाती हुई आती हैं)

१ चारणी—देश पर विपता है छाई, घटा दुख की है मँडराई ।

सब—केसरिया लो तुम पहन, घड़ी है जौहर की आई ॥

१ चारणी—तलवारें लो हाथ में, धरो सदा अगाड़ी पैर,

बढ़ाओ सदा अगाड़ी पैर ।

दुश्मन अपने प्राण ले भागें, कभी न देखें फेर ॥

सब—देस पर बिपदा है छाई, घटा दुख की है मंडराई ।

केसरिया लो पहन घड़ी है जौहर की आई ॥

१ चारणी—जूझो शूरो सिंह से, मचादो भीषण रण-रंग,

मचादो भीषण रण-रंग ।

धरणी गावे सदा पंवारे; बैरी होवें दंग ॥

सब— देस पर बिपदा है छाई, घटा दुख की है मंडराई ।

केसरिया लो पहन, घड़ी ह जौहर की आई ॥

(गाते गाते सब चले जाते हैं)

दृश्य परिवर्तन ।

स्थान—दुर्ग का सिंह द्वार ।

समय—प्रातःकाल के साढ़े चार बजे ।

(महारावल मूलराज और अन्य सब सरदार और सामंत आदि खड़े हैं । सब आपादमस्तक शस्त्रास्त्र-सज्जित हैं ।)

मूलराज—मंत्री जी, मैंने कल जो आज्ञाएँ दी थीं उनके अनुसार प्रबंध होगया ?

मंत्री—जी हाँ, अन्दाता ।

मूलराज—भाई रतनसी, रणवास का सब प्रबंध कर दिया ?

रतनसी—हाँ भैया, आपके संकेत-मात्र की देर है ?

मूलराज—संकेत तो तोप की एक आवाज़ का ही है न ?

रतनसी—हाँ, भैया

मूलराज—मंत्रीजी गोलंदाज़ को आज्ञा दीजिये ।

(मंत्री अपनी तलवार से इशारा करते हैं । उसी समय एक तोप छूटती है । चारों ओर से मारू बाजे बजने लगते हैं । साथ ही दो चार स्थानों में धुआँ उठना शुरू होता है । फिर चिनगारियाँ उठने लगती हैं । थोड़ी देर बाद आग की ऊंची-ऊंची लपटें उठती दीखती हैं । लगभग एक घंटे तक यही दृश्य रहता है । एक घंटे बाद ।)

मूलराज—मंत्रीजी, अब तो सब समाप्त होगया ? अब हम लोगों के पयाण का भी समय आगया ?

मंत्री—हाँ अन्दाता ।

मूलराज—तो अब द्वार खोल दिये जाएँ ?

मंत्री—जैसी आप की आज्ञा हो।

मूलराज—किसी को कुछ कहना तो नहीं है ?

(एक सैनिक का प्रवेश)

सैनिक—अन्दाता, द्वार पर सेनापति महबूब खाँ खड़े हैं। अन्दाता के दर्शन करना चाहते हैं।

मूलराज—अकेले हैं ?

सैनिक—नहीं अन्दाता, साथ दस सिपाही हैं ?

मूलराज—हथियार-बन्द ?

सैनिक—बिल्कुल निश्शस्त्र। केवल एक सिपाही के हाथ में एक झोला सा अवश्य है।

(मूलराज—रतनसी की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देखते है।)

रतनसी—ऐसी अवस्था में मिल लेना तो हानि-कर नहीं है।

मूलराज—अच्छा उन्हें भीतर लेलो और यहाँ ले आओ।

(महबूब खाँ का प्रवेश।)

महबूब—(मूलराज से) आदाब अर्ज है, महारावल साहब।

(रतनसी से गले मिलता है।)

रतनसी—भाई आज का हमारा अंतिम मिलना है। अब थोड़ी देर में चारों दरवाजे खोल दिये जाएँगे। लाओ हमारे लिए क्या भेंट लाये हो ?

महबूब—(सिपाही के हाथ के झोले में से भीमदे का कटा हुआ सिर मूलराज और रतनसी की ओर बढ़ा कर कहता है।) यह

लीजिये भेंट। बढ़िया से बढ़िया। उम्दा से उम्दा। क़ीमती से क़ीमती।

मूलराज और रतनसी—ऐं (कह कर चमक जाते हैं) यह क्या? यह कैसी भेंट?

महबूब—यह आप के घर के भेदू का सिर है। यह ग़द्दार का सिर है। न इसने हमें सारा भेद बताया होता, और न हम, दस मील दूर जाकर इस तरह वापिस आजाते। और मैं तो कहता ही क्या। मुझे अपने मालिक का तो नमक अदा करना ही पड़ेगा। नहीं तो मैं तो दिल्ली जाकर नौकरी छोड़ देता। फिर वहां से यहीं वापिस आकर, अपने बहादुर दोस्त और भाई के कदमों में रह कर सारी ज़िंदगी बसर कर देता। पर मेरी किस्मत में यह नहीं था।

मूलराज—(आश्चर्य से भीमदे के सिर की ओर देख कर रतनसी की ओर देखता है।) भाई इसी ने मुझे भरे दरबार में तुम्हारे विरुद्ध कहा। मैं अपने क्रोध को न रोक सका। क्षमा करो।

रतनसी—(पैरों पर गिर कर) भैया मैं तो आपका छोटा भाई हूं, यह अच्छा हुआ कि आपके सामने ही यह सारा भेद खुल गया। और मैं निर्दोष प्रमाणित होगया।

महबूब—अच्छा, तो अब मैं बाहर जाऊँ?

रतनसी—हां अवश्य। खेद है कि हम आज आपका अधिक स्वागत नहीं कर सकते। हां, पर मेरे इन दोनों बच्चों को लेते जाइये। ये आपके सिपुर्द हैं। इनके धर्म और इनके प्राण की रक्षा कीजिये।

महबूब—हां हां जरूर। मैं इन्हें अपनी जान से बढ़ कर समझूंगा। इन्हें एक बरहमन के सुपुर्द कर दूँगा। आओ भैया।

(रतनसी घड़सी और कानड़ को महबूब के सुपुर्द कर देता है। और वह इन्हें लेकर अपने सिपाहियों सहित अपनी फौज में चला जाता है। थोड़ी देर बाद फिर एक तोप छूटती है और सब दरवाजे खोल दिये जाते हैं। मार काट मच जाती है।

दृश्य परिवर्तन।

(स्थान—सिंहद्वार। समय—सायंकाल के पाँच बजे। चारों ओर लाशों के ढेर लगे हैं। मूलराज और कई सैनिक दोनों हाथों से तलवार चला रहे हैं।)

(रक्त से भीगा और घायल रतनसी का प्रवेश)

रतनसी—भैया, डेढ़ सौ वैरियों को मार चुका। केवल आपके दर्शन की इच्छा से अब तक बचा हूँ। घायल बहुत हो चुका हूँ। (इसी समय एक यवन सैनिक महारावल का सिर ताक कर तलवार चलाता है, और रतनसी बीच में आजाता है, और मूलराज के पैरों के पास ही गिर पड़ता है।)

मूलराज—बस अब सब समाप्त होगया। अब मुझे भी मर मिटना चाहिये।

(मन्त्री का प्रवेश)

मन्त्री—अन्नदाता आइये चलिये, दुर्ग का एक अन्तिम चक्कर तो लगा लीजिये। (दोनों एक ओर चले जाते हैं। कुछ देर बाद।) यह देखिये, दुर्ग का उत्तरी लाश द्वार लाशों का ढेर, और दुर्गन्ध

युक्त धुआँ। यह महबूब के भाई फ़ीरोज की लाश पड़ी है। (आगे बढ़ कर कुछ दूर जाने पर।) यह देखिये देवी-द्वार। यहां रक्त के कारण पैर फिसलते हैं। (आगे बढ़ कुछ दूर जाने पर।) यह देखिये राजमहल। अभी तक कुछ कुछ धुआं निकल रहा है। अभी तक दुर्गंध आ रही है। आज कुल चौबीस हज़ार वीरांगनाओं ने चितारोहण किया है। (आगे बढ़ कुछ दूर जाने पर।) यह पश्चिम द्वार आगया। यहां कुमार रतनसी और महबूब में ठन गई थी। दोनों दुश्मन की तरह लड़े। महबूब को भागना पड़ा। सुनिये, यह घायल यवनों का चीत्कार सुनाई पड़ रहा है। (आगे बढ़ जाते हैं। कुछ दूर जाने पर।) यह देखिये दक्षिण...............

(ठीक उसी समय पीछे से मंत्री पर तलवार का वार होता है, और वह गिर पड़ता है। मूलराज पर भी अनेक सैनिक टूट पड़ते हैं। वह भी गिर पड़ता।)

तीसरी ज्वाला

(१)

उन दिनों दिल्ली के सिंहासन पर अलाउद्दीन खिलजी राज्य कर रहा था। उस की उम्र अधिक नहीं थी। कुछ ही साल पहिले वह अपने चाचा की हत्या करके गद्दीनशीन हो चुका था उसका उत्साह बहुत बढ़ गया था। वह जहाँ हमला करने जाता था वहीं से प्रायः विजयी हो कर लौटता था। नये नये देश जीतने का उसे मानो व्यसन लग गया था।

(२)

सायंकाल का समय था। दिल्ली के शहर में चारों ओर चहल-पहल नज़र आती थी। ठीक इसी समय शहर के पश्चिम छोर पर एक बड़े आलीशान महल में एक अधेड़ उम्र का मुसलमान अपने कुछ दोस्तों के साथ बैठा हुआ बातचीत कर रहा था। मण्डली के सभी व्यक्ति हुक्का और शराब भी बीच बीच में पीते जा रहे थे। उक्त मंडली में जो व्यक्ति अधेड़ उम्र का है, उसका नाम नियाजअली है। वह दिल्ली शहर का कोतवाल है। वह बादशाह का रिश्तेदार और मुँहलगा व्यक्ति है। बादशाह को जब कोई नया काम शुरू करना होता है, तो वह अपने कोतवाल से सलाह लिया करता है। बादशाह का मुँह-लगा होने के कारण

शहर में उसकी बड़ी धाक जमी हुई थी। उसके आसपास हमेशा खुशामदियों का जमघट लगा रहता था। उसके पास शहर का काज़ी बरकतअली भी बैठा था। शहर की मशहूर फ़ातिमा बीबी का गाना हो रहा था। फ़ातिमा एक दो गाने गा चुकी तो कोतवाल और काज़ी में बातें होने लगीं।

कोतवाल ने काजी से कहा—यार, मैंने तो सुना है कि बाद्-शाह सलामत ने आज आप को बुलाया था। क्या, आज कोई नई बात हुई?

काजी ने कहा—हाँ, यार बुलाया तो था, और आज उन्हें धुन भी ऐसी सवार हुई थी, कि अगर मैं न रोकता तो अपना सारा मज़ा, कम से कम-कुछ दिनों के लिए तो किरकिरा हो ही जाता।

कोतवाल ने पूछा—भला क्या बात रोकी थी?

काजी ने कहा—बादशाह सलामत एक नया मज़हब चलाने का इरादा कर रहे थे। यह तो तुम जानते ही हो, कि इन दिनों बादशाह की क़िस्मत का सितारा तेजी से चमक रहा है। जिधर निकल जाते हैं फतह हासिल करते हैं। और यह भी तुम जानते हो, कि जब वे बाहर चले जाते हैं, तभी अपने कुछ चैन की बंसी बजा पाते हैं। मैंने सोचा, कि अगर इनके दिमाग़ में धुन ज़ोर पकड़ गई, तो फिर यहाँ से कहीं टलने का नाम भी न लेंगे।

हाँ, तो फिर तुमने क्या कहा?

जनाब मैंने भी अपनी बात ऐसे ढंग से कही, कि बादशाह के गले में सवा सोलह आना उतर गई।

बात भी बताओगे या कोरी शेखी ही बघारते रहोगे?

मैंने बादशाह से कहा, कि जहाँपनाह, बादशाहों का काम नया मजहब चलाना नहीं है। बादशाहों को तो मुल्क पर मुल्क फतह करना चाहिये। माना कि जहाँपनाह ने अपना दबदबा दक्खन तक जमा लिया है, और सब काफ़िर राजा हजूर की धाक मानते हैं, और देवलदेवी जैसी हूर हुजूर के हरम में मौजूद है। मगर क़सम खुदा की, जिस दिन चित्तौड़ की पदमनी हजूर के हरम में आजायगी, उस दिन देवलदेवी चाँद के मुकाबिले में सितारे की तरह फीकी हो जायगी। जहाँपनाह चित्तौर फ़तह करने से मेवाड़ का मुल्क तो हाथ आयगा ही पर पदमनी भी कब्ज़े में आयगी।

तो आपकी बातें बादशाह ने मान लीं? आपका खयाल है, कि बादशाह चित्तौड़ पर हमला करेंगे?

हाँ हाँ, दो तीन महीनों में ही आप देखेंगे कि शाही लश्कर चित्तौड़ की ओर कूच कर रहा है। भाई असल बात तो यह है, कि खुदा की हम पर खास मेहरबानी है। तभी तो हम लोगों को को लड़ाई पर तो कभी जाना नहीं पड़ा। और मजा तो हूरों का जैसा हम लूटते हैं, वह तुम से छुपा है नहीं।

तो इसका मतलब तो यह हुआ, कि अब राजपूतों से ठनेगी और कम से कम छः महीने चैन से कटेंगे।

इसमें भी कोई शक़ है ? काज़ी ने कहा। इसके बाद महफ़िल में फिर शराब का दौर चलने लगा।

(३)

नगर के कोलाहल से लग-भग एक मील दूर एक बाग़ था। गोधूली का समय था। मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ का एक एक नागरिक अपनी धुन में मस्त था। सब अपने अपने कामों में लीन थे। बाग़ के चारों ओर एक परकोटा खिंचा था। बाग़ बहुत लम्बा-चौड़ा था। उसमें एक महल था, और एक मंदिर भी। मंदिर था महाकाली का। वह बहुत विशाल था। मंदिर की भव्यता का भी दर्शन करने वालों के मनों पर पूरा प्रभाव पड़ता था। मूर्ति भी विशाल थी। काले पत्थर की थी। मूर्ति का रंग-रूप वीरों का उत्साह और भीरुओं के दिल की धड़कन बढ़ाने के लिए काफ़ी था।

सायंकाल की आरती हो चुकी थी। मंदिर में प्रकाश जगमगा उठा था। पुजारी अपने स्थान पर बैठ चुका था। महल के सब व्यक्ति आये, दर्शन किये, और चले गये। केवल एक व्यक्ति मूर्ति के सन्मुख बैठा रहा। व्यक्ति अपने जीवन के चालीस साल पार कर चुका था। उसके चेहरे पर गंभीरता और उत्तर-दायित्व छा रहा था। थोड़ी देर के पश्चात् उसके मुख से निम्नलिखित शब्द निकले। 'माँ, तूने सदा हमारे गौरव की रक्षा की है। तेरी कृपा से ही हमारा अस्तित्व आज तक बचा हुआ है। जब तक तू प्रसन्न है तब तक कोई भी

हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। जिस दिन तू हमसे रूठ जायगी, तो कोई हमें बचा नहीं सकेगा। बस माँ, हमारी अंतिम इच्छा यही है कि सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करें, और गौरव पूर्ण मृत्यु प्राप्त करें।'

इतना कह कर वह व्यक्ति उठा और महल की ओर चला गया। इस व्यक्ति का नाम रत्नसिंह है, और वह मेवाड़ के राणा हैं। मेवाड़ के शासन का सारा भार इन्हीं के कन्धों पर है। इनकी रानी का नाम पद्मिनी है।

(४)

आज चित्तौड़ का क़िला कई दिनों से घिरा पड़ा है। देहली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने घेरा डाला है। जमकर लड़ाई हो रही है। दोनों ओर से काफ़ी संख्या में आदमी मारे जा चुके हैं। घायलों की संख्या भी कम नहीं है। नगर का प्रत्येक बालिग व्यक्ति सशस्त्र है। स्त्रियाँ और बच्चे भी निरस्त्र नहीं हैं। युद्ध की समाप्ति का कोई चिन्ह नज़र नहीं आता। दोनों पक्ष अपनी आन पर अड़े हुये हैं। दोनों को अपनी वीरता पर पूरा भरोसा है।

(५)

रात के बारह बजे हैं। सुलतान अपने डेरे में चिन्तित बैठा बातें कर रहा है। पास ही उसका सेनापति भी बैठा है। सुलतान ने सेनापति से कहा कि मुझे पहले से यह पता नहीं था कि राजपूत इतने बहादुर होते हैं। इनकी बहादुरी के बारे में मेरा जो अन्दाज़ था, वह ग़लत निकला। ये तो ग़ज़ब के लड़ाके हैं। इतनी लड़ाइयाँ जीती पर ऐसे लोगों से सामना कभी

नहीं करना पड़ा। सेनापति ने कहा, जहाँपनाह आप यक़ीन रखिये कि ये लोग कोरी बहादुरी से कब्ज़े में नहीं आयेंगे। आप ही देख लीजिये न कि आज क़रीब पाँच महीने होने आये, ये लोग टस से मस न हुए। इनकी हिम्मत तो दिन-दूनी और रात-चौगुनी बढ़ती जा रही है। अगर दो महीने लड़ाई और जारी रही तो यहाँ से लौट कर बहुत ही थोड़े आदमी देहली पहुँचेंगे। यह क़ौम तो बड़ी ख़ौफ़नाक मालूम पड़ती है। इस मौके पर जितनी भी लड़ाइयाँ हुईं मैंने तो सब में देखा, लोग निडर होकर टूट पड़ते हैं। शेरों की तरह जूझ जाते हैं। और बेफ़िक्र होकर मरते हैं। हँसते हुए मौत के बग़लगीर होते हैं, इनकी मायें इनकी पीठ ठोंकती हैं। वे इनका हौसला बढ़ा कर इन्हें मैदानेजंग में भेजती हैं। इनकी बीबियाँ हँसती हुईं इन्हें जिरहबख्तर पहनाती हैं। इनको कमर में तलवार बाँधती हैं। इन्हें हथियारों से लैस कर देती हैं। मालूम होता है, ये माँ के पेट से ही मरने मारने का सबक़ सीखकर आते हैं। मौत इन के लिए तमाशा है। मुझे आज तक ऐसे दुश्मन से पाला नहीं पड़ा। मैं ने एक तरकीब तो की थी, और वह अगर चल जाती तो मुमकिन था, हमें कामयाबी हासिल होती। मैं ने महाराणा और सरदारों को भिड़ाकर अपना काम बनाना चाहा था, पर कामयाब न हुआ अब एक तरकीब और है अगर आप उसे चला सकें तो मेरा ख़याल है, हमें फ़तेह हासिल हो जाये।

(६)

भर दुपहरी का समय है। चितौड़ मे राणाजी के महल में मेवाड़ के सब सरदार उपस्थित हैं। सब के मुख पर गम्भीरता है। एक बहुत ही विचारणीय प्रश्न पर विचार किया जा रहा है। सभा-भवन के बाहर सुलतान का एक दूत खड़ा है। वह सुलतान का एक पत्र लाया है। उसका उत्तर लेकर वह जायगा। एक एक सरदार ने अपने हाथ में पत्र ले ले कर बार बार पढ़ा। पत्र को पढ़ते ही हर एक का चेहरा क्रोध और घृणा से तमतमा उठता था। अन्त में सब ने एक स्वर से अपनी राय दी। वह यही थी, कि हम समझौता करना नहीं चाहते, और हम समझौता करना जानते भी नहीं। हम मारना चाहते हैं। हम मरना चाहते हैं। हम जीतना चाहते हैं। हम मारना जानते हैं। हम मरना जानते हैं। राणा रतन सिंह ने कहा कि वह आइने में केवल पद्मिनी के मुंह की परछाईं ही तो देखना चाहता है। यदि उसकी इतनी बात मान ली जाए तो क्या हर्ज है। यह माना कि इस लड़ाई में हम इन्हें अच्छी तरह पराजित कर देंगे। पर यह भी निश्चित है कि हमें भी अपने कई चुने हुए सरदारों से हाथ धोना पड़ेगा इस अत्याचारी की इतनी सी बात मान कर हम अपने कितने ही वीरों के प्राण बचा लेंगे और आप लोगों की इच्छा के खिलाफ मैं तो यही कहूंगा। राणा रतनसिंह की यह बात सरदारों ने प्रसन्न मन से नहीं सुनी। सब अपने अपने स्थान पर चले गये। राणा जी जब रणवास में गये तो पद्मिनी

ने कहा कि महाराज आपने यह ठीक नहीं किया। मुझे तो सुलतान की प्रतिज्ञा पर ज़रा भी विश्वास नहीं है। मुझे डर है कि कहीं अवांछनीय ढंग से हमारा वियोग न हो। मान लीजिये कि उसकी बात मान लेने पर भी उसने घेरा न उठाया ? इस पर बाप्पाजी ने वीरोचित लापरवाही से उत्तर दिया—कि यदि वह इतनी ही नीचता पर उतरा तो हम उसके लिये भी तैयार हैं। हमारी तलवारें किराये की तो हैं नहीं। हमारा बल भी उधार लिया हुआ नहीं है। हमारे सैनिकों की ईमानदारी हमारी अपनी चीज़ है। फिर और हमें क्या चाहिये। जब जैसा समय होगा वैसा कर डालेंगे ? हम अपनी जातीय स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और गौरव का अधिक से अधिक मूल्य देने को हरदम तैयार रहते हैं।

इसके पश्चात महाराणा और पद्मिनी दोनों अपना अपना काम सम्भालने चले गये।

(७)

शहर में आज एक अजीब तरह की सनसनी सी फैली हुई है। जितने मुँह उतनी बातें। जितने लोग उतने विचार। कोई उदास है। कोई प्रसन्न है। कोई गहरी चिन्ता में है। कोई राणा के महल की ओर भागा जा रहा है। कोई सेनापति के घर की ओर भागा जा रहा है। ठाकुर वीरसिंह ने एक ऐसे ही भागते हुए सिपाही को रोका, और पूछा, कि आज तो घेरा उठने वाला था न; फिर क्या हुआ ? सिपाही ने कहा कि मैं पहले

अपना ज़रूरी काम कर आऊं फिर आकर सब सुनाऊंगा। उसके आने तक ठाकुर इन्तज़ार करते रहे। थोड़ी देर बाद वह आया, और उसने वीरसिंह को सारा हाल सुना दिया। सुनकर वीरसिंह ने कहा, कि अरे, यह अलाउद्दीन इतना बड़ा सुलतान होकर भी ऐसा झूठा! जिस राजा की ज़बान इतनी कची हो तो समझलो उसके राज्य की जड़ भी उतनी ही कच्ची होगी। इस का वंश अधिक दिन राज्य नहीं करेगा। पर, भाई तुम तो मुझे सारा हाल ब्योरेवार सुना दो, ये लो कविराज जी भी आगये। ये पृथ्वी पर के परमात्मा हैं। ये वीरों को अमर कर दिया करते हैं। यदि ये न हों तो, रण-बांकुरे वीरों का नाम उनके शरीर के साथ ही मिट जाय। इस पर सिपाही ने कहा कि लम्बा क़िस्सा सुनाने का तो समय है नहीं। संक्षेप में अवश्य सुना दूंगा। और वह यह कि सब सरदारों की इच्छा के खिलाफ़ राणा रतन सिंह जी ने अलाउद्दीन की बात मान ली। उन्होंने उसे महारानी पद्मिनी के मुँह की परछाईं काच में दिखा दी। पद्मिनी उस समय आँख मूँदे हुए थीं। जब अलाउद्दीन लौटने लगा, तो, राणा रतन सिंह जी भी क़िले के बाहर कुछ दूरतक उसे पहुँचाने चले गये। बातें करते करते वे छावनी के पास तक चले गये। अलाउद्दीन तो ठहरा धूर्त। इतना मौक़ा देखकर राणा जी को क़ैद कर लिया। यह सब इतनी फुर्ती से किया गया कि बेचारे थोड़े से अंग-रक्षकों को कुछ करने-धरने का मौक़ा ही न मिला। वे सब हक्के-बक्के रह गये। राणा जी को क़ैद करके

अलाउद्दीन ने कहला भेजा कि पद्मिनी मिलेगी तो राणा छूटेंगे नहीं तो क़तल कर दिये जायेंगे। इस मामले में राणा जी की भूल यही हुई कि वे सुलतान के साथ क़िले के बाहर गये। अगर जाना ही था तो पूरे अंग-रक्षकों के साथ जाते। राणा जी ने समझा कि अब तो कोई खतरा नहीं है। इसी भोलेपन ने तो हमारा सदा ही नाश किया है। जब यह खबर यहाँ पहुँची तो सब को मानो काठ मार गया। पर महारानी, गोरा और बादल की चतुराई ने सारी बाजी पलट दी। कुछ का कुछ कर दिखाया। एक भी माई का लाल उनकी कूट-नीति को न समझ सका। यदि हम लोग तलवार के धनी होने के साथ कूट नीति के भी धनी होते तो आज भारत में हमी हम होते। महारानी ने अलाउद्दीन के साथ जाना स्वीकार कर लिया। यह भी कहला दिया कि उनके साथ सात सौ दासियाँ रहेंगी। वे सब पर्दे में रहेंगी सेना का कोई सैनिक उनकी ओर आँख उठाकर भी न देखेगा। बस इसी शर्त के अनुसार सात सौ पालकियाँ अलाउद्दीन की छावनी में जा पहुँची। अपनी धोखेबाजी की सफलता देखकर अलाउद्दीन का रोंआं रोंआं खिल उठा। वह पालकी जिसमें पद्मिनी थी अलग एक बड़े डेरे में धर दी गई, और बाकी सात सौ पालकियाँ उसके चारों ओर। फिर पालकी में की पद्मिनी ने सुलतान से कहलाया, कि राणा से अन्तिम बार मिल लेने दिया जाय।

ठाकुर वीरसिंह बोले तो क्या पालकी में की पद्‌मिनी और महल में की पद्‌मिनी दो थीं। कविराज जी बोले अरे चुप! सुने जाओ मुझे आनन्द आरहा है। वीरसिंह ने फिर पूछा, तो क्या पालकी वाली पद्‌मिनी के चेहरे पर दाढ़ी थी? अरे चुप भी रहो, कविराज जी ने तालियाँ बजाते हुए कहा। सिपाही ने कहा, हाँ—तो खुशी के झोंके में यह बात भी मानली गई। थोड़ी ही देर में वह पद्‌मिनी वाली पालकी वापिस किले की ओर लौटी। उसके साथ कुछ पालकियाँ और भी चल दीं। इधर राणा और पद्‌मिनी का मिलाप होते होते बहुत देर हो गई। आध घन्टे से भी अधिक बीत गया। सुलतान को यह बात बहुत अखरी। वह स्वयं ही डेरे में जा पहुँचा। वहाँ उसने जो कुछ देखा उससे उसके होश उड़गये। वहाँ तो पद्‌मिनी के बजाय एक ऊँचा पूरा हट्टा-कट्टा राजपूत सैनिक मिला। उस सैनिक ने तलवार का वार किया। सुलतान बच गया। वह भागा डेरे के बाहर। इधर बची हुई पालकियों में से राजपूत सैनिक निकल पड़े। सुलतान के क्रोध का पारावार न रहा। छावनी में ही भयंकर मारकाट मच गई। राजपूत चुने हुए थे। मार कर मरजाने का इरादा करके आये थे। वे एक एक करके सब मरे। इधर राणा जी सकुशल किले में आगये। अभी एक भेदिये ने समाचार दिया है, कि सुलतान कल या परसों तक घेरा उठाकर वापिस दिल्ली चला जायगा। फिर आयगा, कि नहीं, कह नहीं सकते। मेरा तो अनुमान है, कि आयगा।

(८)

अलाउद्दीन को गये आज एक महीने से अधिक हो चुका है। सुबह की ठण्डी हवा मर-मराती हुई चल रही है। महारानी पद्मिनी अपने महल के जनाना बाग़ में टहल रही है। साथ ही राणा रत्नसिंह भी हैं। दोनों में अनेक प्रकार की बातें होरहीं हैं। दोनों के चेहरे के भावों से पता लगता है, कि बातें गम्भीर विषय की नहीं हैं। आमोद-प्रमोद हो रहा है। बातें करते करते महारानी बोली, कि यद्यपि अब सारी आपत्ति दूर हो गई है, तथापि ग़ौर से आपका चेहरा देखने पर जान पड़ता है कि आप के मनमें चिंता किसी न किसी रूप में अवश्य ही है। कहिये इस चिंता का क्या कारण है। राणा जी ने ज़रा हँसते हुए कहा, कि सीता का रूप राम की आपत्ति और रावण की मौत का कारण हुआ। तुम्हारा रूप सुलतान की आपत्ति और मेवाड़ के अस्थायी नाश का कारण होगा। मुझे यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। सुलतान चला अवश्य गया है, पर लौटेगा शीघ्र ही, और पहिले से अधिक दल-बल के साथ। हम तो अभी अपनी कमी भी पूरी नहीं करने पाये हैं। अभी हमें अपने प्रसिद्ध वीरों के स्मारक बनाना अत्यन्त ही आवश्यक है। गोरा की वीरता तो सुनहरे अक्षरों में लिखी जाने योग्य है, और उनकी पत्नी का बलिदान भी बेजोड़ है। मालूम होता है अबकी बार पहले से भी भयंकर ख़ून की नदी बहेगी। महारानी ने कहा, हमारी कुलदेवी अब की बार छक जायगी। राणा जी ने कहा, इस देवी की भूख असाधारण है। इतनी शीघ्रता से यह शांत नहीं होगी।

अब तक सूर्य आकाश में अधिक ऊपर आगया था । अतः वे दोनों बातें करते हुए महल में चले गये ।

*　　*　　*　　*

(६)

आज लगभग छै महीने से चित्तौड़ घिरा हुआ है । हज़ारों की संख्या में राजपूत मारे जा चुके हैं। दिनदिन राजपूतों की संख्या कम होती जारही है। राणा जी के एक एक करके बारह पुत्र बलिदान हो चुके हैं। कुल देवी ने राणा को स्वप्न में कहा था 'भूखी हूँ' राणा ने पूछा क्या इतने रुंड-मुंड से भी तेरा खप्पर नहीं भरा ? देवी ने कहा मुझे राजा का रक्त चाहिये। इस पर राणाजी ने अपने एक-एक राजकुमार का राज्याभिषेक किया। उसने तीन दिन तक राज्य किया। चौथे दिन सेना के साथ शत्रुओं पर टूट पड़ा और भयंकर मारकाट करके धराशायी होगया। इस प्रकार बारह राजकुमार और तेरहवें स्वयं राणा जी सदा के लिये सोगये ।

जब स्थिति इतनी गम्भीर हो चुकी तब बचे खुचे सब सरदार एकत्र हुए। सबने निश्चय किया, कि अब इस महायज्ञ की पूर्णाहुति कर डाली जाय। राणा जी ने अपने एक राजकुमार अजयसिंह को पहले ही केलवाड़ा प्रदेश की ओर रवाना कर दिया था, ताकि वंशनाश न हो, राजगद्दी कायम रहे, और शत्रुओं से प्रतिशोध लिया जा सके। अतः राजपूत तो बिलकुल निश्चिन्त थे। उन्होंने तय किया कि सबसे

अंतिम बिदा ले ली जाय। केसरिया वस्त्र धारण कर लिये जायँ। म्यानों को तोड़ कर फेंक दिया जाय। दोनों हाथों में नंगी तलवारें ले ली जायँ। क़िले के दरवाज़े खोल दिये जाएँ। और फिर एक एक वीर एक से अधिक शत्रुओं को मारता हुआ अपने रक्त से कुल-देवी की प्यास बुझाता जाय। एक सरदार ने कहा, कि अपने धन-दौलत और रत्न आदि का भी नाश कर दिया जाय। बच्चों और बूढ़ों तथा स्त्रियों को पहाड़ों की ओर भेज दिया जाय। शत्रुओं को खाने-पीने और लूटने के लिये निर्जन मकानों के सिवा कुछ न मिले। रणवास में से स्त्रियों ने कहलाया, कि हम पहाड़ों में न जायेंगी। केसरिया वस्त्र हम भी पहनेंगी। शत्रुओं को अपनी तलवारों से मूली-गाजर की तरह काटेंगी। हम अपने पुत्र, भाई, पति, पिता आदि सम्बन्धियों को मौत के मुँह में भेज कर आराम से नहीं रहना चाहतीं। हम महाकाली का रूप धारण करना चाहती हैं। इस पर किसी सरदार ने कहा, यदि एक भी स्त्री पकड़ ली गई, अथवा, कहीं स्वयं पद्मिनी ही पकड़ ली गई तो यह सारा बलिदान व्यर्थ ही जायगा न ? इस पर रणवास में से फिर कहलाया गया, कि तो फिर हम चिता पर भस्म हो जायँगी, पर पहाड़ों में न जायेंगी।

इसके बाद सब लोग अपने घर चले गए।

(१०)

रात का अन्तिम पहर है। सुलतान की फ़ौज में पहरेदारों के सिवा सब सोये हैं। एक जगह दो पहरेदार बातें कर रहे हैं।

"मुझे तो जरा झपकी लग गई थी, तब मैंने ख्वाब देखा था।"

'ख्वाब में तो तुमने हूरें देखी होंगी।"

"हूरें तो नहीं, पर यह जरूर देखा कि क़िले का फाटक खुला पड़ा है, और खूब लूट-मार हो रही है।"

"और सुलतान पद्मिनी को दिल्ली लिए जा रहा है ?

"बन्दे को इसकी जरा भी परवाह नहीं। मैं ने तो यह देखा कि मैं खूब धन-दौलत लूट कर ले जा रहा हूँ, और चारों ओर धाँय धाँय आग जल रही है, लूट और मारकाट मची हुई है।"

"अरे यह क्या ? क़िले में ये आग की लपटें कहाँ से आईं ? ये बाजे क्यों बज रहे हैं ? यह हल्ला क्यों हो रहा है ?'

"क्यों क्या लगा रखी है, मियाँ ? मेरा ख्वाब सच हो रहा है ?"

"अरे यह और लो। क़िले का फाटक भी खुल गया। उजाले में साफ़ दीख रहा है। राजपूतों की एक टुकड़ी न जाने क्या चिल्लाती हुई हमारी ओर आ रही है। केसरिया कपड़े पहने हैं। हरएक के हाथ में दो दो नंगी तलवारें हैं, या खुदा आज क्या होगा ?"

(११)

चिता की लपटें उठीं और धीमी पड़ गईं। आदर, पूजा और प्रेम की सामग्री राजप्रसाद और झोपड़ियों की शोभा ज्वाला के समर्पण कर दी गई। उतने ही कठोर हृदय से जितने कोमल हृदय से उन्हें प्रेम किया जाता था। अब ये मौत के खिलाड़ी हर तरह से तैयार थे। 'हर हर महादेव' और 'जय एकलिंग' की घोर गर्जना आसमान की नीली सीमा तक पहुँचने लगी। उनकी आँखों में खून, हाथ में बिजली सिर पर महाकाली और एक एक नस में प्राण उछल रहा था। वे देख रहे थे चित्तौर को, उसके बागों, महलों और मंदिरों को विरक्त निगाह से।

अन्त में फाटक खुला। राजपूतों की एक टुकड़ी छावनी की ओर बढ़ी। उसने वहाँ जाकर मारकाट मचा दी। शत्रुओं ने भी फाटक खुला देखकर किले की ओर बढ़ना शुरू किया। क़िले के दरवाज़े पर गहरी भिड़न्त हुई। बहुत से शत्रु धराशायी हुए राजपूतों के दल के दल फाटक की ओर आने लगे। मुसलमान सब के सब क़िले में घुसने लगे। एक एक पग पर लड़ाई होने लगी। राजपूत लोग 'मरता क्या न करता' की कहावत को साबित कर रहे थे। मुसलमानों को लूट की बड़ी भारी उम्मेद थी। वे उसी धुन में क़िले के फाटक तक आते। फाटक पर उन्हें लूट के बजाय मिलती मौत। जो इक्के दुक्के यहाँ से बच कर भीतर जा पहुँचते वे भीतर मार दिये जाते। सड़कों पर राजपूतों के झुंड घूम रहे थे। प्रत्येक घर पर एक एक राजपूत था। प्रत्येक

मन्दिर पर दो दो चार चार झुण्ड। धुआँ और दुर्गन्ध के मारे नाक फटी जाती थी पर, राजपूत तो इसी दशा में मस्तानी चाल से घूम रहे थे। मालूम होता था, साक्षात् महाकाल अनेक रूपों को धारण कर घूम रहे हैं। हज़ारों मारे गये। हज़ारों घायल हुए। तीसरे पहर तक मार काट होती रही।

अन्त में दलबल सहित अलाउद्दीन घुसा। वह सीधा पद्मिनी के महल की ओर झपटा। रास्ते में न जाने कितनों से उसे भिड़ना पड़ा। फाटक में जब वह घुसा था, उसके साथ हज़ारों थे। महल तक पहुँचा तब तक सैकड़ों रह गये थे। वह महल में घुसा, वहाँ सन्नाटा था। चारों ओर धुआँ भरा था। कुछ दूर बाग के मन्दिर में एक पुजारी मिला। सुल्तान ने पूछा—'पद्मिनी कहाँ है?' पुजारी ने आकाश की ओर अंगुली उठा कर कहा—'वह देखो वह हँस रही है।'

चौथी ज्वाला

(अ)

महाराणा संग्रामसिंह भारत के दुर्भाग्य पर आँसू बहाते हुए सदा के लिए आँखें मूँद चुके थे। मेवाड़ का राजवंश और सरदार भी राणासंग्राम के महदनुष्ठान के प्रति आँखें मूँद चुके थे। खानवा का युद्ध अभी अपनी स्मृति वैसी ही हरी भरी बनाये हुए था। जिस तरह सन् १७६१ को पानीपत की तीसरी लड़ाई हुई

थी। उसके परिणाम स्वरूप महाराष्ट्र में एक भी घर ऐसा नहीं था, जो अपने किसी की मृत्यु पर रोया न हो। इसी प्रकार खानवा के युद्ध का राजपूताने पर भी यही परिणाम हुआ था। कि उस समय वहाँ ऐसा एक भी घर या परिवार नहीं था, जो अपने इस या उस सम्बन्धी की मृत्यु के लिए न रोया हो। खानवा का युद्ध सन् १५२७ के मार्च में हुआ था। मेवाड़ इस युद्धजनित हानि के अल्पांश की भी पूर्ति न कर पाया था, कि तीन साल में ही उसे फिर एक बार जौहर का अनुष्ठान करने का अवसर प्राप्त हुआ।

(आ)

गुजरात में अहमदाबाद आज भी प्रधान शहर है। आज से चार सौ साल पहिले भी वह ऐसा ही था। हां उस समय की रौनक में और आज की रौनक में ज़मीन आसमान का अन्तर है। अहमदाबाद गुजरात की राजधानी था। वहाँ का बादशाह बहादुर शाह के दादा अहमदशाह को महाराणा कुम्भा ने लड़ाई में बुरी तरह हरा दिया था। वह अहमदशाह मालवा के बादशाह के साथ मेवाड़ पर आक्रमण करने गया था। इस लड़ाई में अहमदशाह को तो महाराणा ने हराकर भगा दिया था, और मुहम्मद शाह को उसकी सेना सहित क़ैद कर लिया था। इससे बढ़कर बेचारे दोनों बादशाहों की क्या ज़िल्लत हो सकती थी। अब समय पलटा हुआ था। मेवाड़ में राणा विक्रमादित्य

का राज्य था, और गुजरात में बहादुरशाह बादशाह का। मालवा का बादशाह भी बदल चुका था।

(३)

जुमा की नमाज़ समाप्त हो चुकी थी। बहादुरशाह अपने सरदारों के साथ दरबार में बैठा था। सब अपना अपना काम कर रहे थे। इतने में बहादुरशाह ने अपने वज़ीर से पूछा—'मैंने उस दिन जो मलावा के बादशाह को खत लिखवाया था उसका जवाब आया?' वज़ीर ने नम्रता से कहा—'जहाँपनाह, आज अभी नमाज़ शुरू होने के कुछ ही पहिले वहाँ से हरकारा आया है। मैंने उसे ठहरा दिया है। हुकुम हो तो उसे खिद्मत में पेश करूँ।'

हरकारे का दिया हुआ पत्र पढ़ा गया। पत्र सुनते ही बहादुर शाह प्रसन्न हो गया। ऐसा मालूम हुआ मानो उसका रोआँ रोआँ खिल उठा है। भला अपनी मनचाही बात सुनने, देखने या पढ़ने से किसे आनन्द नहीं होता है? चाहे फिर थोड़े समय के बाद उसका फल ठीक उल्टा ही हो, पर एक बार तो आदमी आनन्द के मारे थिरक ही उठता है। यही हाल बहादुरशाह का हुआ। उसने मालवा के बादशाह को लिखा था कि मेवाड़ की हालत इस समय नाज़ुक है। संग्रामसिंह मुल्के अदम को पहुँच चुका! रत्नसिंह भी अपने बाप के पास जा चुका है। राणा विक्रम मेवाड़ के तख्त पर है। वह कमज़ोर है, अल्पाश है, चिड़चिड़ा है, निकम्मा है। तमाम खानदान में फूट है, आपसी

जलन है। खुदा की महरबानी से खानवा के जङ्ग में हमारे बहुत से दुश्मन फ़ना हो चुके हैं। सारे सरदार राणा के बर्ताव से नाराज़ और चिढ़े हुए हैं। यह खुदादाद मौक़ा है। चाहें तो हम दोनों मिलकर मेवाड़ को कब्जे में कर सकते हैं। चित्तौड़ के किले को ज़मींदोज कर सकते हैं, और सब से बढ़कर अपने पुरखों की जिल्लत का शानदार बदला चुका सकते हैं। ऐसा मौक़ा बार-बार नहीं मिल सकता। मालूम होता है, खुदा हमें इस बार पूरी मदद देगा।

मालवा का बादशाह ज्यादा बुद्धिमान् नहीं था। अपने पुरखों की क़ैद का हाल वह बड़े-बूढ़ों के मुंह से सुना करता था। यद्यपि राणा कुम्भा ने मुहम्मदशाह को बड़े आदर-सत्कार से रखा था, और बड़े आदर-सत्कार से ही बिदा किया था। उसकी सेना को भी उन्होंने सिरोपाव दिये थे, पर क़ैद आखिर होती है क़ैद ही। राणा ने मुहम्मदशाह को दोस्त बना लिया था। पर इस समय मालवे का बादशाह बहादुर के झांसे में आ गया। भला मेवाड़ को जीतने का लालच भी तो मामूली लालच नहीं। उसने भी बहादुरशाह को अपनी मंजूरी दे दी।

बस, उस पत्र में यही था, और इसी से बहादुरशाह खिल उठा था।

(६)

"मैंने आप से कई बार कहा है। आज फिर कहती हूं। जब तक आपका यही बर्ताव रहेगा, कहती रहूंगी। आपके रङ्ग

ढङ्ग अच्छे नहीं हैं। आपके पद के अनुकूल नहीं हैं। आपकी प्रतिष्ठा दिन दिन घटती जा रही है। सारे सरदार आप से रुष्ट हैं। छोटे बड़े सभी आप पर अंगुली उठाते हैं।" रानी कमलावती ने कहा। उसकी वाणी में नम्रता थी। भावों में गम्भीरता थी और थी एक अकथ वेदना।

"मालूम होता है अब तुममें से पत्नीपन निकल गया है। गुरूपन आ गया है। मैं जब आता हूँ तभी तुम मुझे उपदेश देने लगती हो। मैं चाहता हूं तुम मेरी इच्छानुसार चलो, पर तुम मुझे अपनी इच्छानुकूल चलाना चाहती हो। तुमको चाहिये कि तुम मुझे सुख पहुँचाने के सिवा कुछ न करो। मैं अबतक शांति से तुम्हारी बात सुन लिया करता था। इसलिये कि मैं समझता था, स्त्रियों को इस प्रकार उपदेश देने का एक रोग होता है। और तुम भी एक स्त्री ही हो। क्या हुआ, मेरे कारण यदि तुम भी आज रानी के पद पर पहुँची हो। पर, अब मैं देखता हूं, तुम अँगुली पकड़कर पहुँचा पकड़ने लगीं। अब मुझे भी इसका कोई उपाय करना पड़ेगा। आज तक तुम्हारी सब बातें सहता रहा। अब नहीं सहूँगा, हर एक बात की हद होती है। सहन-शीलता की भी हद है। मैंने बहुत सह लिया, मैं अब नहीं सहूँगा। इससे अधिक कोई भी नहीं सह सकता।" राणा विक्रमादित्य ने जवाब दिया। उसकी वाणी में अहंकार था। भावों में उद्दंडता थी और चेहरे पर घृणा।

इसी समय पहरेदार ने दासी से निवेदन किया, कि मन्त्री जी

और सब सरदार लोग बाहरी बैठक में आपके दर्शनों के इच्छुक हैं। यह सुनते ही राणा जी चले गये।

मन्त्री और कुछ सरदारों के यह निवेदन करने पर कि बहुत से सरदार नाराज होकर अपने अपने ठिकानों को चले गये हैं राणा ने लापरवाही से उत्तर दिया—'जाने दो उनके जाने से हमारा क्या बिगड़ता है। इतने में पहरेदार ने निवेदन किया कि गुजरात के बादशाह बहादुर शाह की चिट्ठी लेकर एक दूत आया है। जब दूत राणा के सामने आया और चिट्ठी पढ़ी गई तो कुछ सरदारों के चेहरे क्रोध से तमतमा गये। कुछ मुंह फेर कर ऐसा भाव प्रकट करने लगे, मानों उन्हें बहुत संतोष न हुआ हो। चिट्ठी में बहादुर शाह ने लिखा था, कि हर साल एक करोड़ का खिराज देते रहो। राणा कुम्भा ने जो मीनार बनाई हैं, उसे गिरा दो। मालवा के बादशाह का ताज वापिस लौटा दो। नहीं तो मुकाबिले के लिये तय्यार रहो।

सरदारों के साथ साथ राणा को भी क्रोध आ गया था। आखिर वह भी तो राजपूत ही था न। उसने अपने बचे खुचे सरदारों से सलाह ली। किसी ने युद्ध के लिए तत्परता दिखाई। किसी ने सन्धि करने को सलाह दी। सन्धि करने की बात राणा को न जंची। उसने मन्त्री को सब तैयारी करने का हुक्म दिया और सभा भङ्ग हो गई।

(३)

राणा ने लड़ाई की तैयारी का हुक्म दिया। मेवाड़ के गांव

गांव में तैयारी होने लगी। गांवों से लोग चित्तौड़ की ओर बढ़ने लगे। लड़ने के योग्य आदमी कम थे। इसलिये कम उम्र के लड़के भी रवाना हो चले। सब के सब सशस्त्र थे। तलवार भाला और कटार सब के पास थे। इधर मेवाड़ का एक एक व्यक्ति लड़ाई की तैयारी में लगा हुआ था। उधर राणा अपने स्वभाव के अनुसार नाच-रंग में लगा हुआ था। उसमें दूरदर्शिता तो जरा भी नहीं थी। उसने रूठे हुए सरदारों को मनाने का प्रयत्न करने की जरा भी चिंता नहीं की। उसे तो यह पता ही नहीं था, कि सरदारों की नाराजगी से ऐसे समय कितना भारी नुक़सान हो सकता है। वह घमण्डी, क्रोधी, उद्धत और चिड़-चिड़ा था। वह राणा संग्राम के ज़माने में दो-तीन लड़ाइयाँ देख चुका था। जब सारे देश पर विपत्ति की घटा छा रही हो, उस समय मेवाड़ के राणा को क्या करना चाहिए, किस प्रकार का जीवन बिताना चाहिये, जिससे सेना और प्रजा पर अच्छा प्रभाव पड़े, उनका उत्साह बढ़े, उनका खून उबले, उनमें जीवन फुके, उनमें जोश की बिजली दौड़ जाय, वे रण-रंग में मत्त होकर झूम उठें, उनके प्राण जूझने के लिये आतुर हो पड़ें, मालूम होता है इन बातों की राणा विक्रमादित्य को जरा भी चिन्ता नहीं थी, इन बातों से वह बिलकुल बेखबर था। बस, वह तो सिर्फ दरबार में सिंहासन पर अकड़ कर बैठ जाता। चापलूसों को अपने पास बैठाता। खरी बोलने वालों को, खरे आदमियों को अपने पास से दूर रखता। सच्चे राजभक्तों को

अपने पास फटकने नहीं देता। गम्भीरता उससे कोसों दूर रहती। दरबार में भी वेश्याओं की बातें होतीं। उनके कण्ठ स्वर की चर्चा चलती। एकाध शासन सम्बन्धी काम भी हो जाता। राणा अपने खुशामदियों को शाबासी देता। माननीय सरदारों का उपहास करता। उनका अपमान करता। उन्हें कुढ़ाता।

चारों ओर गुप्तचर भेज दिये गये। एक दिन उनमें से दो ने खबर दी, कि दोनों सेनाएँ रवाना हो चुकी हैं और वे शीघ्र ही आपस में मिलने की कोशिश कर रही हैं। इसके कुछ दिन बाद एक गुप्तचर ने फिर सम्वाद दिया कि दोनों सेनाएं मिल चुकी हैं। दोनों बादशाह बड़े प्रेम से मिले हैं। मिली हुई सेना मेवाड़ की ओर बढ़ रही हैं। लगभग एक मास में चित्तौड़ को आ घेरेंगी। फ़ौज की संख्या बहुत अधिक है। मेवाड़ का साधारण बल तो सामना कर नहीं सकता। हां विशेष बल यदि एकत्रित किया जा सके तो विजय की कुछ आशा की जा सकती है।

मन्त्री कुछ बुद्धिमान् था। वह अपनी बुद्धिमानी के बल पर ही टिका हुआ था। वह खुशामदियों की बहुत सी चालों को अपनी कूटनीति से बेकाम कर दिया करता था। गुप्तचरों का ऊपर वाला संवाद सुन कर उसका माथा ठनका। उसने राणा से प्रार्थना की, कि रूठे सरदारों को सहायता के लिये बुलाया जाय। पहिले तो राणा अपनी आदत के अनुसार साफ इंकार कर गया, पर मन्त्री के साथ साथ एकाध सरदार के और ज़ोर

देने पर अन्त में वह मान गया। सरदारों को एक पत्र लिखा गया। उनको आने वाली आपत्ति से सूचित किया गया। मेवाड़ के प्रति उनके पुरखों की सेवाओं का वर्णन किया गया। अपनी अपनी सेनाओं सहित उन्हें शीघ्र ही चित्तौड़ बुलाया गया।

सरदारों को भी इन सब बातों का पूरा पूरा पता था। पर वे सब जले-भुने बैठे थे। राणा ने उनकी बेइज्ज़ती की थी। वे अपमान की ज्वाला से जल रहे थे। उनकी मेवाड़ के प्रति भक्ति प्रतिहिंसा की भावना से दबी पड़ी थी। वे राणा को ज़लील देखना चाहते थे। वे राणा को दर दर का भिखारी देखना चाहते थे। किसी ने बीमारी का बहाना किया। किसी ने और किसी काम का बहाना किया। पर यह सबने लिखा था, कि राणाजी के पास तो अभी बहुत से वीर मौजूद हैं। जिन पर राणा जी अत्यन्त प्रसन्न हैं। उनके रहते अभी हमारी आवश्यकता ही क्या है।

सरदारों के ऐसे उत्तरों को सुन कर राणा को ज़रा भी रंज न हुआ। पर हां, वह और भी ऐंठ गया। वह क्रोध में सर-दारों से ही युद्ध छेड़ने को तैयार होगया। किंतु मन्त्री भविष्य की आशङ्का से कांप गया। राणा ने गरज कर कहा, मेरे पास सात हज़ार पहलवान हैं। ये बेचारे सरदार रूठ भी जाएँगे तो मेरा क्या बिगाड़ लेंगे। मुझे यह भी पता है, कि कुछ सरदार बहादुरशाह को मदद देने का वचन दे चुके हैं। पर मैं सब

को लड़ाई के मैदान में देख लूंगा। राणा की ऐसी बातें सुनकर मन्त्री उसकी ओर से तो बिलकुल निराश हो गया।

अब मन्त्री ने सोचा कि क्या करना चाहिए। राणा से तो कोई आशा थी ही नहीं। यह भी सम्भव नहीं था, कि वह अपने रहते मेवाड़ की दुर्दशा होने देता। वह तो बुरी से बुरी हालत में भी, यथासम्भव अपने देश का, अपने राजा का लाभही चाहता था। वह मेवाड़ से पुराने गौरव की भी रक्षा करना चाहता था। अन्त में वह रानी कर्मवती के पास गया।

(ऊ)

लगभग १५ दिन हुए क़िला, गुजरात और मालवे की सेनाओं से घिर चुका है। अस्पताल में जीवन-मरण के झूले पर झूलने वाले घायल शीघ्र ही अच्छे होने की आशा में पड़े हैं। श्मशान में चिताओं का धुआँ है। बस, इसके अलावा चारों ओर है जोश उत्साह और जीवन। किले की दीवारों के एक एक छेद पर एक एक सिपाही डटा बैठा है। हज़ारों छेद हैं और उन पर हज़ारों ही सिपाही। मुख्य मुख्य पोलों पर भी आवश्यकता के अनुसार हजारों सैनिक डटे रहते हैं। एक एक सैनिक बीसियों को मारने का हौसला रखता है। हर एक राजपूत सोचता है, कि बहादुरशाह को मारने का सौभाग्य मुझे ही प्राप्त हो। कभी कभी सैनिकों की कुछ टुकड़ियां क़िले के बाहर निकल कर भी लड़-भिड़ आती हैं। कभी कभी रसद का सामान भी लूट लाते हैं।

(८)

मन्त्री महारानी कर्मवती के पास गया और उसे सारी दशा समझा दी । राणा का रङ्ग-ढङ्ग सुनकर वह सन्नाटे में आगई। पर, वह उन स्त्रियों में नहीं थी जो आपत्ति के समय निरुपाय हो जाया करती हैं। उसने सब सरदारों को पत्र लिखे। उसने लिखा कि आज तक आपही लोगों ने मेवाड़ के गौरव की रक्षा की है । आपही लोगों के बलिदानों के कारण आज मेवाड़ की पताका आकाश में लहरा रही है। इस समय आप लोगों को रूठना शोभा नहीं देता। आपत्ति के समय एक हो जाना हमारी परम्परा है। अगर आप लोगों की नाराज़गी की बातें बहादुरशाह तक न पहुँचती तो अभी चित्तौड़ घेरने की उसकी हिम्मत ही न होती। कई महीनों से किला घिरा पड़ा है। राणा ने आप लोगों को पत्र भी दिया, पर आप लोगों ने कोई परवाह न की। राणा ने आप का जी दुखाया। यह मानती हूं कि यह बहुत ही अनुचित हुआ। पर जो हो चुका उसका उपाय ही क्या है? इस प्रकार आप की नाराजगी का परिणाम राणा को ही भोगना पड़ता तो कोई बात नहीं थी। पर, इसका परिणाम तो आप के इन भाइयों को ही अधिक भोगना पड़ेगा, जो हर प्रकार से निर्दोष और आप की सहायता, सेवा, और दया के अधिकारी हैं।

इस पत्र की भाषा ही प्रभावशाली और उत्तेजक थी। फिर यह पत्र रानी द्वारा लिखा गया था। सारे मेवाड़ के नर नारियों

में उसकी प्रतिष्ठा थी। दूर दूर के राजपूत राजा उसे मानते थे। वे उसे बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते थे। उसके इस पत्र ने उनके मन पर जादू का असर किया। वे राणा के प्रति क्रोध और द्वेष को बिलकुल भूल से गये। लगभग सब के सब अपनी अधिक से अधिक सेना सहित, घिरे हुए क़िले में, उस पहाड़ी मार्ग से, जिसका पता मेवाड़ के भीलों और कुछ ख़ास व्यक्तियों को ही मालूम था, आ पहुँचे।

(ऐ)

इधर बहादुरशाह समझ बैठा था, कि क़िला शीघ्र ही फ़तह हो जायगा। क्योंकि उसे पता लग चुका था, कि सब सरदार राणा से नाराज़ हैं। और वे किसी भी प्रकार की मदद नहीं देंगे। पर अब इधर पासा पलट चुका था। क़िले में लड़ने वालों की संख्या पहिले से बहुत अधिक बढ़ चुकी थी। और अब लड़ाई ने उग्ररूप धारण कर लिया थ। मुस्लिम सेना को किला जीतना अब उतना सरल नहीं मालूम पड़ता था।

(ओ)

इसी प्रकार कई दिन और निकल गए। लड़ाई की उग्रता के साथ राजपूतों की संख्या फिर घटने लगी। रसद की भी कमी पड़ने लगी। सबके सामने प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्या किया जाय? एक दिन राणा के महल में सभा हुई। सब सरदार एकत्र हुए। राणा भी आज कुछ उदास से मालूम पड़ते थे। उनका गर्व दूर हो चुका था। उनके खुशामदी साथी कुछ तो मारे जा

चुके थे, और बहुत से किसी न किसी बहाने से कहीं न कहीं चले गये थे। उनके सात हजार पहलवान भी इस जीवन मरण की घड़ीमें अधिक उपयोगी सिद्ध न हुए। देवलिये के रावत बाघ-सिंह ने इस युद्ध में आरम्भ से ही प्रमुख भाग लिया था। उस समय के राजपूतों में अपने कई असाधारण गुणों के कारण ये बहुत माने जाते थे। जिस समय ये सेना के आगे अपने दोनों हाथों से तलवार चलाते हुए शत्रु की सेना पर भीम वेग से टूट पड़ते थे, उस समय शत्रुओं को छठी का दूध याद आ जाता था। आज की इस सभा में भी सब की आँखें बाघसिंह जी पर ही थीं। पास के कमरों में राजपरिवार की प्रमुख स्त्रियाँ भी एकत्र थीं। आज कर्मवती के साथ जवाहरबाई भी थीं। ये दोनों राणा साँगा की वीर रानियाँ थीं। उस से पहले तो उदयसिंह की रक्षा का प्रश्न उपस्थित हुआ। इस समय उदयसिंह चार-पाँच साल का था। विक्रमादित्य के बाद मेवाड़ की गद्दी का उत्तराधिकारी यही था। बाघसिंह ने उदयसिंह को बहुत ही विश्वसनीय व्यक्तियों के साथ बूंदी भिजवाने का प्रबन्ध कर दिया। फिर यह तय किया गया, कि राणा कुछ फौज के साथ, गुप्त मार्ग से दुर्ग के बाहर चले जाएं। वे बाहर मेवाड़ और सारे राजस्थान के गांवों में घूम घूम कर वहाँ से एक सेना खड़ी करें। और शत्रु सेना पर मैदान में बाहर से हमला करें। इसके अलावा यह भी निश्चय किया गया, कि बाहर से किसी बहादुर शाह के शत्रु से भी सहायता ली जाए। यह बात लगी तो बहुत अच्छी। पर

उस समय बहादुर शाह का ऐसा दुश्मन कौन था, जो इसके विरुद्ध इन्हें सहायता देता। सबकी निगाह बाबर के बेटे हुमायूं पर—राणा संगा के कट्टर दुश्मन के बेटे हुमायूं पर गई। और कोई ऐसा हिन्दू राजा था नहीं जो मेवाड़ के लिए बहादुर शाह से लोहा ले सकता। पर क्या यह सम्भव था, कि हुमायूं, जिस का बाप मेवाड़ के राणा का जानी दुश्मन था, एक मुसलमान होकर, एक हिन्दू के पक्ष में, किसी मुसलमान से लड़ाई मोल ले लेता। पर, यद्यपि इन मुग़लों को भारत में आये थोड़े ही साल हुए थे, तो भी यह पता लग गया था, कि इनमें अन्य मुस्लिम शासकों की अपेक्षा मानवोचित कोमल भाव बहुत ही अधिक मात्रा में हैं।

इसी समय रानी कर्मवती ने कहलाया, कि मैं हुमायूं को राखी भेजती हूं। इस प्रस्ताव को सुन कर सब सन्न हो गये। क्योंकि यह प्रस्ताव ही ऐसा था। भला वे राजपूत, जो मुसल-मानों से हमेशा ही लड़ते रहे हैं, इस प्रस्ताव को किसी प्रकार पसन्द करते। पर यह समय सोचने का न था। किसी ने कहा कि यदि हुमायूं न आया तो? इस पर कर्मवती ने कहलाया, कि यदि हुमायूं न आया तो जौहर, करना तो हम भूल नहीं गई हैं। इस पर सब चुप हो गये। हुमायूं को राखी भेज दी गई।

(औ)

बहादुर शाह के क्रोध का आज पारावार न था। कई दिनों से वह घेरा डाले पड़ा था, पर कोई फल न निकला था। इसके

सिवाय इसकी बहुत सी फौज मारी जा चुकी थी। कभी कभी भील लोग उसकी रसद भी लूट लेते थे। उसने अपने तोपखाने के पोर्चुगीज़ अफ़सर को बुरी तरह फटकारा। उसे बहुत बुरा भला कहा उसे भी बात लग गई। उसे जोश आ गया और उस ने क़िले के एक पार्श्व पर भयङ्कर आक्रमण कर दिया। परिणाम यह हुआ, कि दुर्ग को पैंतालीस गज़ दीवार उड़ गई। बहादुर शाह का क्रोध सफल हुआ। उसकी आशा पूरी हुई। वह शान से क़िले में घुसने की तैयारी करने लगा। उसने फ़ौज को एकदम से भीतर जा घुसने का हुक्म दिया। शत्रु सेना अट्टहास करती हुई, उछलती कूदती हुई प्रफुल्ल मन से दुर्ग के पास आ पहुँची।

पर यह क्या? जहाँ अभी एक पल पहिले कुछ सौ आदमी छिपे हुए नज़र आते थे, वहाँ एकाएक कई सौ सैनिकों की संगठित टालियाँ कहाँ से आ गईं। और यह क्या? इन सैनिकों के आगे कौन है? इनका संचालन कौन कर रहा है? दाढ़ी और मूंछ नदारद! बाल बिखरे हुए! क्या यह कोई स्त्री है?

पाठक न आश्चर्य करें। यह जवाहरबाई हैं। राणा सांगा की पत्नी हैं। जब महलों में ख़बर पहुँची, कि दुग की पैंतालीस गज़ दीवार तोपों की मार से उड़ गई और वहीं से अब शत्रु सेना घुसा ही चाहती है, तो जवाहर बाई ने यह समझ कर कि इस घटना से अवश्य ही राजपूतों के हृदय हताश हो जायँगे, शीघ्र ही सब से बिदा ली। वीर वेश धारण किया। सब आवश्यक

अस्त्र शस्त्र धारण किए। घोड़े पर चढ़ीं। लगभग एक हज़ार सैनिक अपने साथ लिये। और पवन वेग से घोड़ा दौड़ाती हुई ठीक उस समय उस टूटी दीवार के पास जा पहुँची।

मृत्यु-व्यवसायी राजपूतों के लिये बस इतना ही काफी था। उनकी निराशा आशा में बदल गई। उनका निरुत्साह उत्साह में परिवर्तित हो गया। सब ने फिर से महाकाल का रूप धारण कर लिया। जवाहर बाई से संचालित यह सेना भी वेग से शत्रुओं पर टूट पड़ी। शत्रुओं का लूट मार करने का सुख-स्वप्न सहसा भंग हो गया। अब उन्हें लेने के देने पड़ गये। गहरी मार काट मची। गुजराती-सिपाही मैदान पर लड़ने के अभ्यासी थे। राजपूत दोनों प्रकार की लड़ाइयों में निपुण थे। शत्रुओं को दोनों ओर से मौत दिखाई देने लगी। यदि भागते तो मरते और भीतर घुसते तो मरते। अतः मार काट भयङ्कर हो चली। शत्रु पक्ष का बहुत नुक़सान हुआ। बहादुर शाह को वापिस अपने डेरे को लौटना पड़ा। उसका क्रोध बहुत बढ़ गया था। पर बेचारा करता क्या? इस प्रकार भयङ्कर लड़ाई चलते चलते तीन चार घण्टे हो गये थे शाम अब होने ही वाली थी। इधर दुर्ग भर में यह खबर अच्छी तरह फैल चुकी थी, कि टूटी दीवार पर गहरी मारकाट मच रही है, और वहां सेना का संचालन जवाहर बाई कर रही हैं। यह सुनते ही बाघ जी के साथ २ अन्य कई सरदार अपने दल बल सहित उधर ही चल पड़े। वहां पहुँचकर उन्होंने जो दृश्य देखा, उससे उस देवी के

आगे श्रद्धा से उनका माथा झुक गया। उन्होंने देखा कि शत्रु-सेना दरार में से भीतर घुसने का प्रयत्न कर रही है। राजपूत सैनिक बढ़ बढ़ कर उसे रोक रहे हैं। जवाहर बाई घोड़े पर सवार इधर से उधर और उधरसे इधर चक्कर काट रही हैं। बाल बिखरे हुये हैं। दोनों हाथों में रक्त रञ्जित तलवारें हैं। यदि मार काट से बच कर शत्रु-सेना का एकाध सिपाही भीतर घुसने का प्रयत्न भी करता है, उसी को जवाहर बाई की तलवार के घाट उतरना पड़ता है। यह देख सरदारों का खून भी जूझ पड़ने के लिये खौलने लगा। उन्होंने चाहा, कि अब निवेदन कर के जवाहर बाई को वापिस महलों में भेज दें। पर उनसे ऐसा कहने की हिम्मत किसी की भी न हुई। इतने ही में जवाहर बाई को एक गोली लगी। वह वहीं गिर पड़ीं। भगवान् मारीचिमाली अपने सारे किरण जाल को बटोर कर पश्चिमी क्षितिज में छुप चुके थे। सूर्यास्त के साथ साथ जवाहर बाई की जीवन-ज्योति भी अस्त हो चुकी थी। भीतर घुसने वाली सेना के कुछ ही व्यक्ति वापिस लौट सके थे। बहुत से मारे जा चुके थे। और कई पड़े पड़े कराह रहे थे। सरदारों ने जवाहर बाई के अन्तिम संस्कार का प्रबन्ध किया। टूटी दीवार की मरम्मत का प्रबन्ध किया और उस देवी का गुण गाते हुए वापिस लौट गये।

(अं)

रानी कर्मवती का पत्र हुमायूं को बङ्गाल में मिला। वह वहाँ

शेरशाह से लोहा ले रहा था। उसके सन्मुख भी जीवन-मरण की समस्या उपस्थित थी। ऐसे समय उसे रानी कर्मवती का पत्र और राखी मिली। उसमें वह सब कुछ था, जो कठोर से कठोर मानव हृदय के व्यक्ति को भी कोमल करने के लिये काफ़ी होता है। पत्र पढ़ते ही वह उत्तेजित हो उठा। वह इस बात को भूल गया, कि अपनी बहिन बनने वाली इस वीराङ्गना का पति उसके (हुमायूं के) बाप को हिन्दुस्तान से निकालने की क़सम खा चुका था। दूसरे ही क्षण उसका राखी बँधा हाथ पत्र का जवाब लिखने में लग गया। अपने सरदारों के बार बार मना करते हुए भी उसने लिख दिया कि मैं ज़रूर आऊंगा। अपना सब कुछ क़ुर्बान करके भी मैं बहादुरशाह को परास्त करूंगा।

पर मालूम होता है, मेवाड़ के इतिहास के पन्ने एक जौहर की कहानी से रँगे जाने के लिये तड़प उठे थे। मेवाड़ की कुल देवी रक्तपान के लिये लालायित थीं। इधर हुमायूँ ने बङ्गाल छोड़ कर मेवाड़ की ओर अग्रसर होने का प्रयत्न किया। उधर बर्सात शुरू हो गई। नदी नाले सब भर गये। ठीक उसी समय शेरशाह ने सब रास्ते रोक लिये। हुमायूँ घिर गया।

(अः)

हुमायूँ के आशा भरे पत्र से राजपूतों में दुगुना बल आगया। यों तो जो लोग हँसते हँसते मौत का स्वागत कर सकते हैं, उनके लिये किसी दूसरे की सहायता का कुछ अधिक मूल्य

नहीं है। पर यह तो स्पष्ट ही था कि वे हुमायूँ की सहायता से बहादुरशाह का अधिक से अधिक नुक़सान कर सकेंगे। अतएव उनका हर्षित होना स्वाभाविक ही था। और इसी आशा के बल पर शत्रुओं को और कुछ दिन रोक रखने के इरादे को, बहुत कम साधन रहने पर भी उन्होंने युद्ध जारी रखा। यह तो वे सोच ही चुके थे, कि हमें जौहर करना पड़ेगा। जवाहरबाई के बलिदान से यह बात और भी स्पष्ट हो चुकी थी।

(क)

एक के बाद दूसरा दिन बीतने लगा। चित्तौड़ में राजपूत लोग हुमायूँ का इंतिजार कर रहे थे। दूसरी बार हुमायूं के पास जो दूत भेजे गये उनमें से लौट कर एक भी न आया। इधर युद्ध की भयंकरता और राजपूतों के उत्साह और यश की इच्छा भूख की तीव्रता को कमी भी कर सकते तो कब तक? बहुत से मुख्य सरदार सदा के लिये सो चुके थे।

अन्त में एक दिन दूत ने आकर कहा, कि बंगाल में बरसात शुरू हो गई है। नदी नाले सब भर चुके हैं। शेर शाह ने आने जाने के सारे मार्गों को बन्द करके हुमायूँ को घेर लिया है। पग पग पर लड़ाई हो ही है। हुमायूँ अच्छी तरह लोहा बजाए बिना एक पग भी इस ओर नहीं बढ़ सकता। उसको सेना के लिए बंगाल की जलवायु अनुकूल नहीं है। उसकी सेना में बीमारी फैल रही है। उसके सैनिक बीमारी से मर रहे हैं। बहुत से सैनिक बिना सूचना दिये अपने घर चल दिये हैं। वह अपना

सब कुछ लगा कर भी इधर आना चाहता है। इसीलिये जौनपुर में उसने शेरशाह से डटकर मोरचा लिया, किन्तु हारा। गंगा पार करने को उसने अपना घोड़ा गंगा में डाला। घोड़ा बीच में ही थक गया। वह डूब ही चुका था, पर एक भिश्ती ने, जो अपनी मशक पर सवार होकर गंगा पार कर रहा था, हुमायूं को अपनी मशक दे दी, और इस प्रकार उसको जान बचाई। उसने विश्वास दिलाया है, कि अवसर मिलते ही वह अवश्य ही अपना वचन पूरा करेगा।

इस संवाद का परिणाम यही हुआ, कि एक सभा बुलाई गई। बचे बचाये सब सरदार एकत्र हुए। राणा विक्रमादित्य भी बाहर से जैसी चाहिये वैसी सहायता न पहुँचा सके थे। राणा की अनुपस्थिति में बाघ सिंह जी उनका प्रतिनिधित्व कर रहे थे। उन्होंने पहिले तो दुर्ग की, युद्ध सामग्री की, सेना की, रसद की सारी वास्तविक स्थिति उनको समझा दी। फिर हुमायूँ की ओर से आया हुआ सम्वाद भी उन्हें कह सुनाया। ऐसी दशा में सब सरदारों ने रानी कर्मवती के विचार जानना चाहे। रानी ने छूटते ही उत्तर दिया कि हुमायूँ को प्रतीक्षा करना अब भूल होगी। यदि पहिले की तरह तोपों की मार से फिर दीवार का कोई हिस्सा उड़ गया, तो अब की बार शत्रुओं की बाढ़ रोकना पहिले से अधिक मुश्किल होगा। और उस दशा में स्त्रियों की मान-प्रतिष्ठा की क्या दशा होगी यह आप सोच ही सकते हैं। अतः मेरे विचार से तो अब जौहर कर डालना चाहिये। मुझे

अन्य स्त्रियों के विचारों का पता लग चुका है। सब मेरा साथ देने को तैयार हैं। लगभग सभी उत्सुक हैं। अब जहाँ तक सम्भव हो शीघ्र ही प्रबन्ध करना चाहिये।

इसके पश्चात् सब गम्भीर प्रसन्नता के भावों से ओत-प्रोत हो चले गये।

(ख)

इस ऊषा कालीन प्रकाश की पहली किरण जैसे ही चित्तौड़ के किले की पूर्वी दीवार से टकराई, कि शत्रु-सेना के पहरेदारों और अनेक उठे हुये सैनिकों ने दुर्ग में से आग की लपटें उठती हुई देखीं। लपटों की ऊंचाई शीघ्रता से बढ़ने लगी। थोड़ी देर में इतनी ऊँची होगई, कि दूर दूर तक के सब लोगों को देख पड़ने लगीं। साथ ही बाजों की आवाज़ें भी आने लगीं। शत्रु-सेना के सैनिकों को आश्चर्य हुआ, कि आज इतने बाजे क्यों बज रहे हैं? बहादुर शाह ने अपने पोर्चुगीज़ सेनापति को बुला कर कहा, कि यह जो कुछ होरहा है, यह अच्छे आसार नहीं हैं। अपने तोपख़ाने को पूरा तैयार रखो। मुमकिन है अब थोड़ी ही देर में क़िले का फाटक खुल जाय।

(ग)

"कहिये ठाकुर साहब, आज मैं कैसा लग रहा हूं?" बाघ सिंह जी ने अपने पास खड़े चूंडावत सरदार से मुस्कराते हुए पूछा।

'मैंने कई राणाओं को यह छांगी बांधे हुए देखा है, पर जो

शोभा आज यह आप के सिर पर दे रहा है वह मैंने सच कहता हूँ कभी नहीं देखी।" चूड़ावत ने बाघसिंह जी से कहा।

"आज मेरे पूर्वज सूरजमल और रायमल तथा पृथ्वीराज मेरे सिर पर छांगी देखकर हर्षातिरेक से फूल उठेंगे।" बाघ सिंह ने फिर हँसते हुए कहा।

"मृत्यु के गगनभेदी अट्टहास में स्वयं इस प्रकार अग्रसर होना और दूसरों को उत्साहित करके बढ़ा देना, बाघ जी, यह आप जैसे का ही काम है।" चूंडावत सरदार ने कहा।

इस समय तक सूर्य अच्छी तरह निकल आया था। बाघ जी चूड़ावत सरदार से और अन्य सरदार अपने अपने साथियों से बातें कर रहे थे। समय समय पर प्रत्येक पोल से खबरें मिलती जा रही थीं। इतने में महलों की ओर से एक सैनिक दौड़ता हुआ आया। उसने आते ही कहा, कि अन्न-दाता जी दोनों स्थानों की ज्वाला लगभग शांत हो चुकी है। माता कर्मवती तेरह हज़ार वीरांगनाओं के साथ स्वर्ग की ओर प्रयाण कर चुकी हैं। आपकी आज्ञानुसार नक़द द्रव्य—रुपया पैसा, रत्न जवाहर, सोना चांदी, माल असबाब, खाने पीने की चीज़ें, और शत्रुओं के लिये उपयोगी सामान नष्ट कर दिया गया है। मकान तोड़-फोड़ कर रहने के लिये अनुपयोगी कर दिये गये हैं। हमारे बाद शत्रु यहाँ जितने भी दिन जीवित रहेंगे, अपने ही साथ लाये हुए सामान से रहेंगे। यहाँ से उन्हें कुछ न मिलेगा। अपंगों, असमर्थों और पुजारियों के

परिवारों को गुप्त मार्ग से सुदूर जंगल में पहुँचा दिया गया है। सब पुजारी और ब्राह्मण तो तलवारें ले ले कर अपने अपने मन्दिरों में छिप गये हैं। जब शत्रु मन्दिरों में उन्हें सूने देखकर घुसेंगे, वे उन पर एकदम से टूट पड़ेंगे।

इतने में एक दूसरे सैनिक ने ख़बर दी, कि शत्रुओं की छावनी में रसद अब कुल पन्द्रह दिन की रह गई है।

यह सुनते ही बाघजी ने एक सैनिक को दौड़ाकर भीलों के सरदार से कहला दिया, कि जब शत्रु-सेना दुर्ग में आवे, उस समय तुम गुप्त-द्वार से बाहर जाकर, अपने आदमियों के साथ शत्रु-सेना के पिछले भाग पर टूट पड़ना। और लूट सको तो लूटना। न लूट सको तो सामान का नाश अवश्य कर देना।

इतने में एक सैनिक ने ख़बर दी, कि हुमायूं शेरशाह से लड़ता-भिड़ता दिल्ली पहुँच कर, वहाँ से नई सेना एकत्र करके, माँडू की ओर आक्रमण करने चल दिया है।

यह सुनते ही सब के चेहरों पर हर्षोन्माद छा गया। इसी समय बाहर से 'अल्ला हो अकबर' की आवाज़ सुनाई दी। उक्त आवाज़ के पूरी होते न होते 'जय दुर्गा' 'जय महाकाली' 'जय एकलिंग' आदि अनेक आवाजें सुनाई देने लगीं।

फिर बाघ जी घोड़े पर चढ़ गये और उन्होंने तलवार घुमाई। इस संकेत के साथ ही सब आपस में एक दूसरे से गले मिल मिल कर अपने नियत स्थानों पर चले गये। दूसरी बार तलवार घुमाते ही दुर्ग के सारे फाटक खोल दिये गये।

फिर क्या हुआ ? इसका उत्तर आज कौन दे सकता है ? इस प्रश्न का वास्तविक उत्तर तो दे सकते हैं, चित्तौर के खंडहर। दुर्ग के कंगूरे। दुर्ग के फाटक। राणा कुंभा का बनवाया हुआ स्तम्भ। दोनों के रक्त से अघाये हुए रजकण। वे स्थान जहां चिताएँ धू धू करके जली। दुर्ग पर सहस्राधिक वर्षों से लहराने वाली लाल पताका। नीला आकाश। शीतल शुभ्र चन्द्रमा। आग की तरह जलता हुआ सूर्य। सप्तर्षि मण्डल, आकाश गंगा ध्रुव और असंख्य तारे। चारणों के पंवारे।

गिरा अनयन नयन बिनु बानी।

पांचवीं ज्वाला

अंक पहला

दृश्य पहला

स्थान—दिल्ली, दीवानआम।

समय—बारह बजे दोपहर।

सम्राट अकबर सिंहासन पर बैठे हैं दरबार लगा हुआ है। टोडरमल, भगवानदास, आसफ़ख़ाँ आदि अमीर-उमराव यथास्थान बैठे हैं। वज़ीर आज़म कुछ काग़ज़ात पेशकर रहे हैं, और अकबर उन पर यथायोग्य हुकुम देते जा रहे हैं। साथ ही पास के मुसाहिबों से कुछ बातें भी करते जा रहे हैं।)

अकबर—यह तो खुदा की महरबानी—ग़ैरमामूली महरबानी ही समझनी चाहिये, कि हम इतने थोड़े वक्त में राजपूताना के एक बड़े हिस्से पर फ़तह हासिल कर सके, और आसफ़ख़ाँ अगर तुम जैसा सिपहसालार न होता तो इतनी जल्दी फ़तह मिलती या नहीं इसमें भी शक़ है।

आसफ़ख़ाँ—यह तो जहाँपनाह की फ़राखदिली की एक जीती जागती मिसाल है, जो इस नाचीज़ के एक ज़रा से काम को भी इतना बढ़ाकर हुजूर मान रहे हैं। नहीं तो इस गुलाम की क्या मजाल कि कुछ कामयाबी हासिल कर सकता। जहाँपनाह सच कहता हूँ, गये जङ्ग में मैं अपने सिपाहियों के साथ क़िले के फाटक की ओर बढ़ा। क़िले की फ़ौज हम पर तीर, गोला-गोली, पत्थर वग़ैरह की बरसात करने लगी। हमारी फ़ौज के बड़े हिस्से ने मैदान से अपना मुँह मोड़ा। उस वक्त मेरा रोआं रोआं पस्त हिम्मत हो चुका था। क़िले वाले मेरी भी पीठ देख लेते। पर ठीक उसी वक्त मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानों जहाँपनाह खुद, अपने घोड़े पर सवार होकर आ पहुँचे। बस, फिर क्या था, मुझे मालूम हुआ कि मुझमें दस गुनी ताक़त आगई। मैं ज़ोर से चिल्लाया। बहादुरो, बादशाह सलामत आ पहुँचे। लानत है, तुम्हारी जवांमर्दी पर। तुम तो औरतों से भी निकम्मे रहे। यह सुनते ही फ़ौज लौट पड़ी। आँधी की तरह टूट पड़ी क़िले के फाटक पर। और कुछ ही घण्टों में क़िले पर शाही झण्डा लहराने लगा। यह जहाँपनाह की ही हस्ती

थी, जिसने उस वक्त हम लोगों में जान डाल दी। नहीं तो मेरा बूता ही क्या जो मैं कुछ कर सकता। यह लीजिये राजा मानसिंह जी भी तशरीफ ले आये। (राजा मानसिंह से) क्यों राजा साहब, गये जङ्ग में फतह होने का सबब, मुझे बादशाह सलामत की मौजूदगी का यक़ीन आ जाना ही था न ?

मानसिंह—(अकबर को कोर्निश करके) वाह, इसमें भी कोई शक है ? मालूम होता है, उस समय, स्वयं भगवान ही आप को जहाँपनाह के रूप में दीख गये थे।

अकबर—दरअसल आप दोनों बहादुर हैं। मुझे आप दोनों पर फ़ख़ है।

एक अमीर—मगर जहाँपनाह, राजपूताने का एक कुछ छोटा, पर लोहे से भी ज्यादा कड़ा, हिस्सा अभी बाकी है !

दूसरा अमीर—और सुनते हैं, वहाँ का राजा बहुत मग़रूर और ज़िद्दी तबीयत का आदमी है।

तीसरा अमीर—इसका मतलब ?

दूसरा अमीर—जनाब, इसका मतलब यही, कि वहाँ का राजा बादशाह सलामत को डोला नहीं देना चाहता। और डोला देना तो रहा दूर, वह तो जहाँपनाह को हिन्दोस्तान का बादशाह ही नहीं मानता। तिस पर भी तुर्रा यह कि वह बादशाह सलामत को, गुनाह माफ़ हो, 'तुर्कड़ा' और ऐसे ही कई गन्दे अलफ़ाज़ से याद करता है। और उसकी हिम्मत तो देखिए, उसने राजा मानसिंह साहब को राजपूत जात से बाहर करार दे दिया है।

(यह बात राजा मानसिंह को कुछ बुरी लगती है, और वे अपनी गर्दन खुजलाने के बहाने अपना सिर झुका लेते हैं ।)

चौथा अमीर—अजी जनाब, लोग उसे 'हिन्दू सूरज' कहते हैं। वह अपने को समझता भी यही है । शायद इसीलिए वह इतना घमण्डी भी हो गया है । मगर इस नाचीज़ को तो इस बात का कामिल यक़ीन है, कि जिस दिन जहाँपनाह की त्योरी बदलेगी, उस दिन चाहे वह 'हिन्दू सूरज' हो या 'हिन्दू खुदा' फ़ना होता ही नज़र आयेगा ।

पहला अमीर—जहाँपनाह की जवाँमर्दी और दिलेरी में शक करना तो कुफ्र है, मगर अपने मालिक के सामने सच्चाई को छुपाना भी गुनाहे अज़ीम है । इसीलिये मैं कहता हूँ, कि मेवाड़ के राना और आमेर के राजा एक ही चीज़ नहीं हैं । राजा साहब दूरंदेश हैं । राजा साहब के दिमाग़ में जितनी राजपूती शान है, उतनी ही समझौता पसन्द इन्सानियत भी है । राना के दिमाग़ में राजपूती शान तो है ही, पर समझौता पसन्द इंसानियत के बजाय फ़ना करके फ़ना होने वाली इंसानियत है । राजा साहब सल्तनत मुग़लिया के एक भारी पुर्ज़े रह कर फ़ख्र महसूस कर लेंगे । मगर ज़िद्दी राणा तो राजपूती सल्तनत क़ायम करने का सपना देखता है ।

आसफ़ख़ाँ—अगर जहाँपनाह का हुक्म हो, और राजा साहब को कोई ख़ास ऐतराज़ न हो, तो मेवाड़ का राणा राजपूती सल्तनत क़ायम करने का सपना देखने के बजाय अपने क़िले पर

शाही झण्डा लहराता देख सकता है।

(यह बात सुन कर राजा मानसिंह के कुछ बोलने की चेष्टा करते ही चौथा अमीर बोल उठता है।)

चौथा अमीर—जनाब सिपहसालार साहब आपने भी खूब बात कही ! भला राजा साहब को ऐसी बात में क्या गैरराज हो सकता है। राजा साहब तो खुद चाहते हैं, कि राना का ज़िद्दीपन दूर हो। उसमें भी राजा साहब की सी इंसानियत आ जाय। उसकी भी कुर्सी, शाही दरबार में, राजा साहब की कुर्सी के नीचे लगा करे। मुझे यक़ीन है—मुझे कामिल यक़ीन है, जिस दिन हमारा लश्कर मेवाड़ की ओर क़दम बढ़ावेगा, उस दिन राजा साहब अपने लश्कर के साथ हमारे आगे होंगे।

अकबर—आप लोगों की बातों से क्या मैं यह नतीजा नहीं निकालूँ, कि आप लोग मेवाड़ के राणा से जंग छेड़ने का इरादा कर रहे हैं ?

(राजा मानसिंह फिर बोलने की चेष्टा करते हैं, पर चौथा अमीर फिर बोल उठता है।)

चौथा अमीर—राजा साहब के दिल की हिचकिचाहट को मैं समझता हूँ। वे समझते हैं, कि जब मेवाड़ पर हमला होगा, तो लोग यही समझेंगे कि यही जहाँपनाह को सिखा-पढ़ा कर लाये हैं। और राजा साहब इस तरह की तानाज़नी को सह नहीं सकते। मगर राजा साहब को जानना चाहिए कि समझदारों के अच्छे कामों पर बेसमझ लोग ऐसा ही करते हैं। तानाज़नी

किया ही करते हैं। उँगली उठाया ही करते हैं। मगर अब, लाजवन्ती की तरह, इस प्रकार सिकुड़ने से काम थोड़े ही चल सकता है। दुनिया में अँगुली उठाने वालों की अँगुली के इशारे पर ही अगर चलते रहें, तो आराम से रहना कतई हराम हो जाय, और दूसरी बात यह कि, अब राजा साहब को अपनी इज़्ज़त और हम लोगों की इज़्ज़त को दो चीज़ें नहीं समझना चाहिये। राजा साहब का जिस्म अलग है। राजा साहब का राज्य अलग है। राजा साहब का धन और दौलत अलग है। लेकिन बावजूद इन सब बातों के, अगर राजा साहब, अपनी दूसरी बातों की तरह, अपनी इज़्ज़त को भी, हमारी इज़्ज़त से अलग समझते रहेंगे, तो मेरे ख़याले नाक़िस से सख़्त ग़लती करेंगे।

(चारों ओर 'वाह वाह' का शोर उठता है।)

आसफ़ख़ाँ—आप की इतनी लम्बी तकरीर में सिर्फ़ यही दलील एक करोड़ की है। राजा साहब के पास इस दलील का तो जवाब ही क्या होगा ?

अकबर—तो क्या आप सब साहबान की मंशा यही है, कि मेवाड़ से जंग ठान दिया जाय ? ज़रा अच्छी तरह सोच समझ लीजिये। ऐसा न हो, फिर कहीं पछताना पड़े।

आसफ़ख़ाँ—ख़ुदावंद, पछताना ! पछताना तो हुज़ूर के दुश्मनों की क़िस्मत में है।

राजा मानसिंह—मगर, जनाब, सिपहसालार साहब, राजपूत

लोग, अपनी पराजय को विजय में बदलना खूब अच्छी तरह जानते हैं। राजपूत लोग अगर कभी हार भी जाते हैं, तो वे रोते और पछताते नहीं। वे अपनी हार को जीत और दुश्मनों की जीत को हार में बदल देना माँ की गोद में ही सीख कर आते हैं।

दूसरा अमीर—राजा साहब, आप तो बस, एक बार हमारे आगे हो जाइये। फिर हम सब देख लेंगे।

चौथा अमीर—राजपूताने में, जहाँ कहीं भी, राजा साहब हमारे साथ होंगे, वहाँ जंग का नतीजा फ़तह के सिवा और कुछ नहीं हो सकता।

अकबर—अच्छा, जब आप लोगों की यही मर्ज़ी है, तो हमारा भी शाही हुकुम यही है, कि हमारा लश्कर मेवाड़ जाने के लिये तैयार किया जाय। मेवाड़ी पहाड़ों की गुफाएँ शाही तोपों की गड़गड़ाहट से गूँज उठें। हम भी देखना चाहते हैं मेवाड़ी राजपूतों की बहादुरी।

(दुपहर की नमाज़ की आवाज़ सुनाई देती है और दरबार बरख़ास्त हो जाता है)।

दृश्य दूसरा

(स्थान—दिल्ली, आसफ़ ख़ाँ का मकान। समय—सायंकाल के साढ़े सात बजे।)

(आसफ़ ख़ाँ अपने चार-पाँच दरबारी अमीर मित्रों के साथ बैठा बातें कर रहा है। अमीर लोग वही हैं, जिन्हें हम दीवान आम में दरबार के समय नं० एक, दो, तीन और चार के रूप में देख चुके हैं। बातें दरबार की ही चल रही हैं। हुक्क़ा एक के हाथ में से दूसरे के हाथ में घूम रहा है। कमरे के एक कोने में गाने और नाचने वालियाँ अपने सहायकों के साथ बैठी हुई और गाने की आज्ञा मिलने की प्रतीक्षा कर रही हैं।)

तीसरा अमीर—जनाब सिपहसालार साहब, आप भी बड़े अजीब आदमी मालूम पड़ते हैं। आप सिवा लड़ने-मरने के और कुछ भी जानते हैं, या नहीं? आप लोगों को तहस-नहस करने के सिवा कुछ और भी सूझता है, या नहीं? गुज़श्ता जंग की तो अभी थकान भी नहीं मिटी कि आप लोग एक नया जंग छेड़ने पर आमादा हो गये। गज़ब के आदमी हैं आप लोग। खुदा की दुनिया को आप लोग मकतल बना डाला चाहते हैं। न जाने क्यों, बादशाह सलामत को आप अपनी ही मर्ज़ी के मुआफ़िक़ चलाते रहते हैं।

पहला अमीर—जनाब अमीर साहब, अगर आपका दिमाग़ इन बातों का भेद समझ सकता होता, अगर आप सल्तनत के दाव-पेंचों को समझ सकते तो फिर बात ही क्या थी!

चौथा अमीर—लीजिये जनाब सुन लीजिये, कि हम लोग राजपूतों से भिड़ने के लिये क्यों आमादा होगये। यह तो आप को मालूम ही है, कि जब से इन राजपूतों ने बादशाह सलामत को डोले देना शुरू किए हैं, तब से बादशाह सलामत इन पर ज़ुरूरत से ज्यादा फ़िदा होते जा रहे हैं। दरबार में राजपूतों की इज्ज़त दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ रही है।

तीसरा अमीर—तो इसमें आप लोगों का क्या नुकसान? मगर आप लोगों की इज्ज़त भी तो बढ़ रही है, फिर आप लोग डाह क्यों करते हैं?

पहला अमीर—बस जनाब यहीं तो आप की अक्ल आपको धोखा दे जाती है। अजी जनाब यह तो ठीक है, कि आज हमारी इज्ज़त घट नहीं रही है, पर इस बात का आपको यक़ीन है, कि आगे फिर कभी आपकी इज्ज़त घटेगी ही नहीं?

तीसरा अमीर—अच्छा तो लड़ने-भिड़ने से आपकी इज्ज़त बरक़रार कैसे रहेगी?

चौथा अमीर—अगर राजा मानसिंह और उनकी फ़ौज और हमारी चाल से मेवाड़ भी शाही हुकूमत में आ गया तो बादशाह सलामत हम पर खुश होंगे या नहीं! और अगर राजा मानसिंह हमारी तरफ़ होंगे, जैसा कि हमारा यक़ीन है, तो जीत हमारी ही होगी। और शाही लश्कर की जीत होने पर इज्ज़त हमारी ही बढ़ेगी, राजपूतों की नहीं। आप तो अभी नये अमीर हैं। अभी आप को इन बातों के समझने में कुछ अर्सा लगेगा।

(इतने में नौकर एक सुराही और कुछ प्यालियाँ लिये हुये आता है, और उन्हें बीच में धर कर चला जाता है।)

पहला अमीर—(तीसरे अमीर से) इस बार आप जंग में ज़ुरूर चलिये। आप को सही सलामत वापिस लाने का ज़िम्मा मेरा। और साथ ही आपको दौलत से लदे हुए लाने का भी ज़िम्मा मेरा। और दौलत के साथ ज़ेवर भी इतने, कि जिन्हें देखकर बेगम साहिबा आपको दुगुना प्यार करने लगें। अभी आप किसी जंग में शरीक भी तो नहीं हुए हैं।

चौथा अमीर—हां जी, अब की बार इन्हें ज़रूर ले चलो। (सुराही में से प्याली में शराब डालते हुए) अच्छा तो बातों के साथ साथ कुछ कुछ मज़ा इस परी का भी लूटा जाय। लश्कर की रवानगी में तो अभी करीब एक या डेढ़ महीना बाकी है ! तब तक हमारे अमीर साहब भी कुछ कुछ समझने लग जाएंगे। (खुद पीकर, दूसरी प्याली भरकर दूसरे अमीर को देता है)

पहला अमीर—अब की बार लूट होने पर मैं तो ज़नाना ज़ेवरात पर हाथ साफ करूंगा।

आसफखाँ—मैं तो अपने लिए वहाँ से किसी खानदानी औरत को लौंडी बना कर लाऊंगा। दौलत तो मैंने काफी इकट्ठा करली है। दो-तीन पुश्त तक खाती रहेगी।

दूसरा अमीर—इस बात की भी इस बार भरसक कोशिश करनी पड़ेगी, कि बादशाह सलामत लूट पाट के मौके पर किसी तरह का अड़ंगा न लगा दें।

तीसरा अमीर—मसलन ।

दूसरा अमीर—कि औरतों पर हाथ मत डालो। बूढ़ों को तंग मत करो। बच्चों को सताओ मत। मन्दिरों में मत घुसो। हालांकि मामूली सिपाही तो इन बातों को कम ही सुनते हैं, पर हम लोगों को तो मानना पड़ता है न।

चौथा अमीर—अहा हा हा''''''वह मारा। अरे मियां चलो झपटो उधर। देख क्या रहे हो। राजपूत आगे जा रहे हैं। देर करने से खाली हाथ लौटना पड़ेगा।

आसफखां—लो यह तो अभी से ढेर हुए जा रहे हैं। अरे म्याँ, जरा होश में आइये। यह दिल्ली है। इस नाचीज़ का गरीब खाना है। चित्तौड़ का क़िला नहीं।

चौथा अमीर—बसबस हट जाओ। गड़बड़ मत करो। मुझे मज़ा। आरहा है।

दूसरा अमीर—(अपना सिर मलता हुआ) अरे यह क्या जहांपनाह ने चित्तौर की सूबेदारी का ताज मेरे सिर पर धर दिया है।

(आसफ़खां ज़ोर से हसता है)

चौथा अमीर—जनाब; जरा जबान संभाल कर बोलिये। आंखें फाड़ कर देखिये। चित्तौर की सूबेदारी तो जहांपनाह ने मुझे अता फरमाई है। उस पर तो मेरा हक़ है। मैं अपने हक की हिफ़ाज़त के लिये यहीं फ़ना हो जाऊँगा। (म्यान में से तलवार फेंक कर और खाली म्यान लेकर दूसरे अमीर पर झपटता है।

आसफखां हंसता हुआ, उसके कन्धों पर ज़ोर डाल कर वहीं बैठा देता है ।)

दूसरा अमीर—(लड़खड़ाते हुए पैरों से झपटता हुआ) अच्छा तो आइये । दो दो हाथ यहीं सही ।

तीसरा अमीर—अच्छा तो जनाब सिपहसालार साहब, आप लोगों ने चित्तौर यहीं फतह कर लिया । लूट के बंटवारे के वक्त मुझे बुला लीजियेगा (जाता है ।)

आसफखां—(गाने वालियों को इशारा करता है । वे गाना शुरू कर देती हैं । नशे में पड़े हुए अमीर समय समय पर वाह वाह चिल्लाते हैं । बीच बीच में ठठाकर हंसते हैं ।)



दृश्य तीसरा

[स्थान—चित्तौर दुर्ग, राजमहल में दरबार। समय—दिन के ग्यारह बजे।]

(महाराणा उदयसिंह सिंहासन पर बैठे हैं। साहीदास, कूंड़ाजी, करणसिंह, अजयसिंह, सुरतसिंह, पृथ्वीसिंह, वीरसिंह आदि सब सरदार यथास्थान बैठे हैं। साहीदास जी दिल्ली का आया हुआ खत राणा जी की आज्ञा से दरबार में सुना चुके हैं, और उसी पर विचार हो रहा है।)

उदयसिंह—हां, तो आप सब सरदारों ने दिल्ली से आया हुआ पत्र तो सुन ही लिया। अब आप लोग इस पर अपनी उचित सम्मति दें। मेरे तो सर्वस्व आप ही लोग हैं। मेरा गौरव आप पर निर्भर है। मेरे जीवन के आश्रय आप हैं। आप के बिना मेरा अस्तित्व नहीं के सामान है।

अजय—दीवान जी, आप यह क्या कहते हैं। हमारे पूर्वज आप के पूर्वजों के साथ जिये-मरे। हमारे पिता आप के पिता के साथ जिये-मरे। और हम आप के साथ जीना और आपके साथ ही मरना चाहते हैं।

उदयसिंह—आप लोगों से आशा तो यही है। आज तक संसार में मेवाड़ का गर्वोन्नत सिर आप लोगों के बल पर ही रहा है। आप लोग अनुपमेय वीरता के अवतार, तलवार के धनी,

मृत्युञ्जय के वरदपुत्र, मुण्डमालिनी जगदम्बा के अनन्य उपासक और महिषमर्दिनी महामाया के लाडले बेटे हैं। जब तक आप लोगों के कठोर हाथों में, मृत्यु-प्रेयसी की दूती-चमचमाती हुई तलवारें हैं, तब तक मेवाड़ के नर-नारी तो क्या पशु भी, और पशु ही नहीं रजकण भी अपने को निर्भय समझते हैं। बड़ी से बड़ी आपत्ति से भी अपने को सुरक्षित समझते हैं। बेचारी मुगल सेना की क्या बिसात, जो मेवाड़ का बाल बांका करे। मेवाड़ लड़ना जानता है। मेवाड़ जूझना जानता है। मेवाड़ खून की होली खेलना जानता है।

कविराज—(जोश में आकर) अन्नदाता जो सुनिये: —

जिसके गिरिकानन में केहरि सदा लगाया करें दहाड़।
जिसके नर वीरों के तन में हैं पक्के वज्रोपम हाड़॥
नर ही नहीं नारियाँ जिसकी समय पड़े पर हैं विकराल।
जिसके एक एक बच्चे के कर में रहता है करवाल॥
मूलमंत्र जिसके जीवन का है संघर्ष, त्याग, बलिदान।
जिसके कण शोणित पी पीकर गाते हैं मस्ती का गान॥
जिसका झण्डा अपना-उनका रक्तपान कर लहराता।
'उन्नत था, हूं, और रहूँगा' निर्भय हो रहता गाता॥

चारण—

लोह तवा सी है जिसके वीरों की छाती!

देश धर्म की लाजमात्र जिसकी है थाती ॥
युद्ध निमन्त्रण युद्ध कथा जिसको है भाती ।
यम की भीषण धमकी भी जिसको न डराती ।
जीवन की घड़ियाँ हुई हों जिसकी पूरी अरे ।
सुतसिंह को छोड़कर फल भी हाथों हाथ ले ॥

भाट—

जय जय जय एकलिंग प्रभु, जय जय जय दीवान ।
जय जौहर-ज्वाला धनी, जय मेवाड़ महान ॥
जय मेवाड़ महान, गहन, पर्वत, नद नाले ।
ललनाएं, सरदार, शूर सैनिक मतवाले ॥
अकबर क्या यमराज भी आए तो हम हैं अजय ।
जय दुर्गा जगदम्बिका, चामुंडा, मेवाड़ जय ॥

(सब के चेहरों से उत्साह टपकने लगता है, कोई मूंछों पर ताव देते हैं, कोई तलवार की मूठ पर हाथ रखते हैं ।)

जयमल—मेवाड़ की महिमा अकथनीय है। मेवाड़ से शत्रुता मोल लेकर, मेवाड़ के वीरों के साथ साथ मेवाड़ के शत्रु भी अमर हो जाते हैं ।

पत्ता जी—मालूम होता है अकबर की ग्रह-दशा खोटी है। तभी तो वह इस समय बिना किसी कारण के हम से झगड़ा मोल लेना चाहता है ।

साहीदास—अगर दीवान जी, और सब सरदार उचित समझें तो एक बार पत्र के द्वारा उन लोगों को समझाया जाय, ताकि व्यर्थ की जन हानि न हो।

उदयसिंह—बिलकुल नहीं। उन्हें यहां आने दो। यदि बहुत ही आवश्यक होगा, तो उसी समय कुछ कर लिया जायगा, तब तक हमें तैयारी पूर्ण रूप से कर लेनी चाहिये।

दूदा जी—पहले के जौहर से होने वाली कमी अभी ज़रा भी पूरी नहीं हो पाई है। इसलिए दुर्ग का तो प्रबंध हम लोग कर लेंगे। और दीवान जी बाहर पहाड़ों और गावों में घूम कर धन, जन और शस्त्रास्त्रों का प्रबंध करें। इन चीज़ों की बहुत आवश्यकता होगी।

उदयसिंह—हरगिज़ नहीं। यह भी आपकी बात खूब रही। मैं तो यहाँ से बाहर चला जाऊँ। और आप लोग अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर शत्रुओं से जूझें। आप लोग मुझ से—कुंभा और सांगा के वंशधर से—यह आशा रखते हैं। मेरी वर्तमान विलासिता को देख कर आपने यह समझ लिया होगा, कि मुझ में कायरता है। मैं युद्ध से जी चुराता हूँ। मुझे क्षत्रियोचित में आत्म सम्मान नहीं है। मैं अपने मेवाड़ की हरी-भरी भूमि को शत्रुओं से पद दलित होती हुई चुपचाप देख लूंगा। यह तो ठीक है, कि पिता जी के बाद मेवाड़ की अस्थिर दशा ने मुझे राजमहल से बाहर अप्रकट जीवन व्यतीत करने को विवश किया। परिणाम यह हुआ, कि मेरी राजकुमारोचित शिक्षा

पूर्ण रूप से न हो सकी। मुझ में क्षत्रिय सुलभ आक्रामकता का भाव विलासिता से दबा रहता है। मैं अपने राज्य से ही संतुष्ट रहना चाहता हूं। पर इसका यह अर्थ नहीं कि जब मेवाड़ पर आक्रमण होगा तो मैं जंगलों में भागता फिरूँगा। विश्वास रखिए, जिस दिन मेवाड़ पर आक्रमण होगा, मैं समरवेश धारण कर आप लोगों के आगे रहूँगा। जिस दिन, आप लोग केसरिया धारण करेंगे, चमकती हुई तलवारें सूतकर जूझने को अग्रसर होंगे, विश्वास रखिये, मैं भी रणरङ्ग में झूमता हुआ आपके आगे चलूँगा। भगवान एकलिंग साक्षी हैं। मेरे पूर्वज साक्षी हैं। भगवान के प्रांगण का ज्योति पुंज सूर्य साक्षी है। मेरे मेवाड़ के सब चराचर साक्षी हैं। मैं आगे होकर झगड़ा मोल लेना नहीं चाहता। पर मैं कायर नहीं हूँ। मैं बाहर नहीं जाऊंगा। यहीं—चित्तौड़ में—सूर्य पोल पर—आप लोगों के आगे आप लोगों से पहले जूझूंगा।

दूदाजी—दीवान जी, क्षमा करिये। मेरा मतलब यह नहीं था। क्षमा करिए, मेरी बातों से यदि आपको आघात पहुँचा हो। मैं अपने भावों को अधिक स्पष्ट कर दूं। उक्त सम्मति देने का मेरा मतलब आपको आपके गौरव से वंचित करना नहीं था। यह तो हम सब जानते ही हैं, कि अकबर की शक्ति हम से बहुत अधिक है। यदि हमें इस बार भी जौहर करना पड़ा, और हम लोगों के साथ आप भी खेत रहे तो फिर शत्रुओं से मोर्चा लेने वाला और कौन बचेगा। यदि आप रह गये तो आप समय समय पर शत्रुओं की नींद हराम करते रहेंगे।

अजयसिंह—इसके सिवाय संसार के सामने हम एक यह उदाहरण रख देंगे, कि मेवाड़ के वीर राणा जी की अनुपस्थिति में भी युद्ध का सफलतापूर्वक संचालन कर सकते हैं। जौहर के महाव्रत को गौरवपूर्ण ढङ्ग से निभा सकते हैं। समय पड़ने पर अपना नेता चुन सकते हैं। उसके इशारे पर अपने को बलिदान कर सकते हैं। अपने स्वामी की दूरस्थित उपस्थिति मात्र से ही अनुप्राणित होकर बड़े से बड़ा बलिदान कर सकते हैं। दीवान जी, क्या यह आपके लिए कम गौरव की बात होगी, कि हम—आपके तुच्छ सेवक—आपको दूर रख कर, आपको किसी भावी संघर्ष के लिए सुरक्षित रखकर, उतना ही अनुपम बलिदान कर सकें कि जितना आपकी आँखों के आगे करते। यह अवश्य है, कि शत्रु तो इन बातों को बुरे रूप में चित्रित करेंगे ही। पर सत्य, लाख छिपाने पर भी अन्त में प्रगट हो ही जाता है।

उदयसिंह—आपके तर्क अकाट्य हैं। पर मैं अपने वैयक्तिक गौरव का लोभ सम्वरण नहीं कर सकता। मैं तो जान-बूझ कर कलंक अपने सिर लेना नहीं चाहता। मेरे आंतरिक भावों के भगवान साक्षी हैं। फिर भी आप लोगों की सम्मति मुझे मान्य है।

साहीदास—बस, तो फिर दीवान जी, इस बार आप अपना सर्वोच्च गौरव हमें दान में दे डालिए।

जयमल—अब समय कम है मंत्रणा का कार्य समाप्त होना

चाहिये। कार्य का विभाजन भी कर दिया जाय। एक या डेढ़ महीने से पहिले तो अकबर इधर नहीं आ सकेगा।

साहीदास—सम्भव है दो महीने भी लग जाएँ। आंबेर और मेवाड़ में जो भेद है, वह तो अकबर से छिपा नहीं है। मेवाड़ से भिड़ने की तैयारी भी मेवाड़ की शान के अनुकूल ही की जायगी। आज सुबह एक दूत से तो मुझे पता लगा है, कि देहली में तरह तरह की बातें सुनी जा रही हैं। पहिली हार के अपमान को बादशाह सलामत नहीं भूले है। अब वे अपनी सारी शक्ति लेकर इधर आएँगे।

उदयसिंह—अच्छा तो आएँ वे लोग खुशी से। हमारी तलवारों के सिवाय, हमारे गोली-गोलों के सिवाय, हमारे तीर-गोफनों के सिवाय, हमारे मेवाड़ की कोई भी सजीव निर्जीव वस्तु, समर प्रांगण के सिवाय कहीं भी उनका स्वागत नहीं करेगी। भगवान एकलिंग की, मेरे पूर्वजों की, मेवाड़ के प्राण पुरुषों की यही अभिलाषा है जो उनके इस तुच्छ सेवक उदयसिंह के द्वारा आप पर प्रकट कर दी गई। अब, बहुत सम्भव है, मैं भविष्य में अपने इतने सरदारों में से अनेक के दर्शन-लाभ न कर सकू।

(राणा जी अपने कमरे में चले जाते हैं। दरबार समाप्त हो जाता है।)

दृश्य चौथा

स्थान—नगर सेठ धनपत साह की हवेली।

समय—रात के नौ बजे।

(धनपति साह गद्दी पर तकिये के सहारे बैठे हैं। साथ ही उनके कुछ मित्र भी हैं, लगभग सब खुशामदी हैं। सामने चपला बैठी है। संगीत हो रहा है। हुक्का घूम रहा है, बातें भी होती जाती हैं। गंभीर विषय आने पर सेठ ने इशारे से गाना बन्द करवा दिया।)

धनपति—मैं तो पहिले से ही कहता आता हूँ, कि जब तक ये साहीदास, पत्ता जयमल आदि जीवित हैं, तब तक लड़ाई नहीं मरेगी। इन्हें लड़ने-भिड़ने के सिवा कुछ भी नहीं सूझता। जब देखो तब मूछें मरोड़ना, मारकाट की बातें करना, हथियारों के खरीदने की बातें करना—इसके सिवाय इन्हें कुछ भी नहीं आता। आज भी दरबार में इन्हीं लोगों ने दीवान जी को अपने अनुकूल कर लिया। इन लोगों के लिये रसद जुटाते-जुटाते मेरी तो नाक में दम हो गया। कई बार चाहा कि मेवाड़ छोड़कर चला जाऊँ, पर, जब जब दीवान जी से प्रार्थना की तब तब उन्होंने, न जाने किस जादू भरे ढंग से मुझे समझाया, कि रुक जाना पड़ा। अब की बार मालूम पड़ता है, कि सर्वनाश हो जायगा।

एक मित्र—किसका ?

धनपत—अरे किसका क्या, मेरा-मेरा।

दूसरा मित्र—हाँ जी, रङ्ग-ढङ्ग से तो यही मालूम पड़ता है। उत्तम हो, कि आप अपनी जायदाद, जितनी भेजी जा सके उतनी, जल्दी ही अहमदाबाद भिजवा दें, वहाँ अकबर भी आपको नगर सेठ बना देगा। बस फिर आपको और क्या चाहिये ?

तीसरा मित्र—हाँ यार, तुमने तो बहुत ठीक सलाह दी। सेठ जी को आप हर समय ऐसी ही बढ़िया सलाह दिया करते हैं।

चौथा मित्र—हम लोगों की ऐसी ही बुद्धिमत्तापूर्ण बातों से तो सेठ जी हम पर रीझा करते हैं।

चपला—आप लोग तो कृतघ्न मालूम होते हैं जी। जिस देश के अन्न जल से आप पले, जिस राज्य के टुकड़े खाकर आज आप इस सम्पन्न दशा को पहुँचे, उसी को छोड़कर भाग जाना चाहते हैं, आप आपत्ति के समय ? मुझे अगर मालूम होता, कि आप लोग इतनी ओछी तबियत के आदमी हैं तो आप के यहाँ कभी न आती। मुझे क्या मालूम था, कि आप लोगों के यहां ये सब अस्त्र-शस्त्र केवल देखने के लिए पड़े हुए हैं।

धनपत—अरी भगतन, तू तो आज हमारी गुरुआनी बन गई मालूम होती है। तुझ पर भी क्या जयमल-पत्ता का असर पड़ गया है ? तुझे इन बातों से मतलब ? हम चाहें जो करें। तुझे क्या ? तेरा काम है नाचना-गाना ? ये लड़ाई-भिड़ाई और मार-

काट के काम हम लोगों के हैं। इन्हें समझ भी हम ही सकते है। तू तो कोई अच्छा-सा गाना सुना। तू क्यों इन झगड़ों में पड़ती है ?

चपला—अच्छा माना, कि मैं भगतन हूं, और मेरा काम गाना-बजाना ही है, तो क्या हुआ ? क्या मैं मनुष्य नहीं हूं ? क्या मुझे हृदय नहीं है ? क्या मैं अपना और अपने देश का भला-बुरा नहीं सोच सकती हूँ ? क्या मैं अपने देश के लिए बलि नहीं हो सकती हूं ? यदि मेरे शरीर, रूप और स्वर को भोग कर भी आप लोग संसार के किसी कार्य से वञ्चित नहीं हो सकते, तो मैं ही फिर क्यों किसी कार्य से वंचित की जाऊं ? और यदि मैं बुरी ही हूँ तो मुझे बुरी बनाने और मेरे बुरे पन को कायम रखने वाले भी तो आप ही लोग हैं। यदि मैं पापिन हूँ, तो आप भी तो पापी हैं। मेरे पाप के मूल में तो है पेट की ज्वाला तथा पतित का उद्धार करने के बजाय धक्के मारने की समाज का नीचतापूर्ण मनोवृत्ति, पर आपके पाप के मूल में तो हैं, आपके धन-बल से उत्पन्न दुर्दम्य वासना। जब धर्मराज अपनी न्याय-तुला पर आपके और मेरे पाप को तोलेंगे तब मेरे पलड़े से आपका पलड़ा बहुत भारी रहेगा। और यदि कहीं मुझे जौहर की चिता पर चढ़ने का सौभाग्य प्राप्त होगया तो फिर मैं अपने यहां के पाप यहीं फूंक जाऊंगी।

समपत—अरी भगतन, यह क्या तू जौहर में सम्मिलित

होगी ?(अपने मित्रों से) लो भई देखो इसकी हिम्मत। जप-तप करने चली बिलैया सत्तर चूहे खाय।

(मित्र अनेक भावों से आश्चर्य प्रगट करते हैं। दासी का प्रवेश।)

दासी—(मित्रों और अन्य पुरुषों से) आप सब लोग बाहरी बैठक में जाएँ। यहाँ अभी बहू जी आयेंगी।

(सब चले जाते हैं। धनपत की स्त्री कमला का प्रवेश।)

कमला—(धनपत से) आपकी पत्नी होने से पहिले ही अच्छा होता यदि मुझ पर बिजली गिर गई होती। मुझे आज पता लगा, कि चपला केवल वैश्या ही नहीं और भी कुछ है। उसका शरीर वैश्या का है, पर उसकी आत्मा विकसित मालूम होती है। आपको अपने कमरे में हथियार सजाने का जितना व्यसन है, उतना उनका सदुपयोग करने का उत्साह नहीं है। बड़े विचित्र प्राणी मालूम पड़ते हैं आप।

धनपत—अरे मालूम होता है। आज तुम दोनों मुझे ठोक-पीट कर राजपूत बना डालोगी।

चपला—राजपूत ठोक-पीट कर नहीं बनाए जाते। ठोक पीट कर बनाया हुआ राजपूत ऐन मौके पर धोका दे जाता है। राजपूत तो मां की गोद में से ही रजपूती का पाठ सीख कर आता है।

धनपत—(कमला से) अच्छा मैं तुम से एक बात पूछता हूँ! अगर तुम से कोई लड़ने भिड़ने आवे तो तुम अपने गहनों से उसे मारोगी ?

कमला—गहनों से क्या मारूँगी ? घर हथियार बहुत से जो पड़े हैं।

धनपत—तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम अपने गहनों से हथियार का काम नहीं ले सकतीं, क्यों कि वे तुम्हारे कोमल अङ्गों की सुन्दरता को बढ़ाने के लिए हैं।

कमला—बेशक।

धनपत—तो इसी तरह मेरी पगली प्रियतमा जी, मेरे हथियार मेरे कमरे की शोभा को बढ़ाने के लिये हैं न कि लड़ने भिड़ने के लिये। भला मुझे अधिकार ही क्या है, कि मैं अपने कमरे के गहनों को, बिना उस की लिखित आज्ञा के, अपने ही समान अन्य प्राणियों का रक्त बहाने के काम में ले डालूं।

चपला—अच्छा, अगर आप के यही विचार हैं अपने देश के प्रति, तो मैं कल ही दीवान जी पर आप के ये विचार प्रकट करूंगी, और सम्भव हुआ तो नगर सेठाई के आपके सारे अधिकार छिनवा कर आपके मित्रों को देश-निकाला दिलवाऊंगी।

धनपत—अरी देवी बस, बस रहने दे। अब ज्यादा न कर। तू कहेगी वैसा ही नाच लूंगा। मैं अहमदाबाद न जाऊंगा।

चपला—यों मुझे चकमा नहीं दे सकते। दो बातों की और प्रतिज्ञा करो। एक तो यह कि मुग़लों की सेना को ज़रा भी रसद न दे कर मेवाड़ी सेना की रसद का सारा प्रबन्ध अपने धन से करोगे। और यदि तलवार लेकर न भी लड़ सको तो रण-क्षेत्र में घायलों की सेवा अवश्य करोगे!

धनपत—हां, सब करूँगा। जो कुछ तू कहेगी सब करूँगा।

(कान पकड़ कर प्रतिज्ञा करता है।)

दृश्य पाँचवाँ

स्थान—चित्तौड़ के किले के बाहर आस-पास का मैदान।

समय—प्रातःकाल सात बजे।

(घेरा पड़ा हुआ है। चारों तरफ़ से घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़, गोले गोली की आवाज़ें, सैनिकों की मारो मारो की आवाज़, घायलों की कराहें सुनाई दे रही हैं। अकबर अपने डेरे में आसफ़खां और अन्य सरदार अमीरों के साथ बैठा बैठा सलाह कर रहा है।)

अकबर—(क्रोध से) आसफ़खाँ अपनी इसी ताक़त और दिलेरी के भरोसे पर, उस दिन दरबार में तुमने यह जङ्ग छेड़ने को कहा था न, या तो तुम्हारे जासूसों की तुम्हें दी हुई ख़बरें झूठ थीं, या तुम परले सिरे के चापलूस थे।

आसफ़खां—जहांपनाह मेरी अर्ज़............................

अकबर—तुम्हारा सिर। आज तीन महीने से ज्यादा अर्सा गुज़र चुका, अभी तक फ़तह हासिल होने का कोई निशान नहीं दिखाई देता। रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है। बे हिसाब आदमियों की जानें जा रही हैं। रसद कम होती जा रही है। बाहर से आने वाली रसद को भील लोग लूट लेते हैं। राणा गांवों में घूम घूम कर सिपाही, रसद, हथियार और आदमी लगातार भेज रहा है। उनका लूटा जाने वाला सामान

नहीं के बराबर है। लानत है तुम पर, तुम्हारी दिलेरी पर, तुम्हारी बहादुरी पर, तुम्हारी शेखी पर, तुम्हारे जासूसों पर, तुम लोग आज तक न तो राणा को ज़िन्दा पकड़ सके और न मुर्दा ही। मेरी समझ में नहीं आता, कि तुम लोग हो किस मर्ज़ की दवा। मालूम पड़ता है, इस बार भी हमें पहिले की तरह शिकस्त हासिल कर के लौटना पड़ेगा ;

टोडरमल—मैंने तो बादशाह सलामत को देहली में ही अर्ज़ कर दिया था, कि मेवाड़ और अम्बेर में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। पर उस वक्त जहांपनाह ने मेरी अर्ज़ पर मुतलक़ ख़याल न फ़रमाया। उस वक्त तो सिपहसालार साहब का जादू चल चुका था।

अकबर—देहली से चलते वक्त हमारे लश्कर की तादाद कितनी थी ?

आसफ़खां—नब्बे हज़ार।

अकबर—घेरा कितने लश्कर से डाला गया है ?

आसफ़खां—अस्सी हज़ार से।

अकबर—मारे कितने जा चुके हैं ?

आसफ़खां—बीस हज़ार।

अकबर—और घायलों की तादाद ?

आसफ़खां—दस हज़ार।

अकबर—आज हम लोगों को यहां घेरा डाले तीन महीने से

ज्यादा हो गये हैं। अगर दो तीन महीने यही हालत और रही तो फिर हम लोगों की हालत क्या होगी ?

भगवानदास—हालत क्या होगी ! चुपचाप अपना सा मुँह लेकर दिल्ली वापिस लौटना पड़ेगा। अम्बेर की धूल और मेवाड़ की धूल में बहुत भेद है, जहांपनाह।

अकबर—अच्छा, ये बातें तो रहने दीजिये। यह बतलाइये, कि अब करना क्या चाहिये ? अपनी इज्ज़त यों दूसरों के सिर पर डालने से तो काम नहीं चलेगा। अगर आप लोगों का ढङ्ग यही रहे, तब तो हज़ारों आदमियों की जानें गँवाना फिजूल ही है। हमें जल्दी ही घेरा उठा कर दिल्ली की ओर चल देना चाहिये। और अगर आप लोग ऐसी ज़िल्लत उठाना गवारा नहीं कर सकते तो फिर जी-तोड़ कर जङ्ग करिये। कमज़ोरों, बुज़दिलों, और आलसियों की मदद तो खुदा भी नहीं करता।

हसनखां—अब तो मेरे खयाल से सलामत कूचे बनाये जाने चाहिये, और फिर सुरङ्ग उड़ाना चाहिये। जबतक सलामत कूचे नहीं बनते, तब तक हमारा लश्कर तीर, गोफन और गोली गोलों से भुनता रहेगा। क़िले की दीवार के पास तो हम अभी तक फटकने ही नहीं पाये हैं। अफ़सोस कि हम अपना आधे के करीब लश्कर तो यहाँ बिना कुछ हासिल किये कटा चुके हैं।।

टोडरमल—हाँ ठीक है, जब तक सुरङ्ग न उड़ाई जायगी, हम क़िले के भीतर घुस नहीं सकते। क़िले में दो तरह से भीतर पहुँचा जा सकता है। एक तो सुरङ्ग उड़ा कर और दूसरा दरवाज़ा तोड़

कर या खुलवा कर। सो अब तक सुरङ्ग तो उड़ाई नहीं जा सकी और दरवाज़ा खुलने के रङ्ग ढङ्ग अभी तक मालूम नहीं पड़ते हैं। राजपूत कुछ हमारे रिश्तेदार तो हैं नहीं, कि हम पर दया कर के दरवाज़ा खोल दें। और जिस दिन वे अपनी ओर से दरवाज़ा खोलेंगे, उस दिन हमारे लश्कर के कितने आदमी यमलोक की ओर रवाना होंगे यह नहीं कहा जा सकता। वह दिन प्रलय का दिन होगा। उस दिन को हिन्दोस्तान की होने वाली औलाद, राजपूत क़ौम का एक एक बच्चा, हिन्दू क़ौम का एक एक बच्चा, नहीं नहीं बहादुरी की क़द्र करने वाला एक एक मुस्लिम बच्चा भी बड़े फ़ख्र से याद करेगा। अब तो जनाब ऐसी हालत पैदा हो गई है, कि राजपूतों के दोनों हाथों में लड्डू रहेंगे। और हम हारें तो ज़िल्लत और जीतें तो कुछ नफ़ा नहीं।

अकबर—कुछ भी हो, राजा साहब, अब तो इस बला से पिण्ड छुड़ाना ही होगा। वापिस लौट कर, सुलह कर के, या और किसी तरह से नहीं, पर सुरङ्ग उड़ा कर या दरवाज़ा तोड़ कर और क़िले में घुस कर ही। ना कामयाब हो कर चुप बैठ जाना, हिम्मत हार जाना, मैंने भी नहीं सीखा है। राजपूत क़ौम बहादुर है। मेवाड़ के राजपूत भी ग़ज़ब के बहादुर हैं। पर मुझे भी बहादुरों से लड़ने में ही मज़ा आता है। हाँ, तो, आसफ़ खाँ, अब सलामत कूचे बनाये जाएँ और सुरङ्ग उड़ाने की तैयारी हो।

दृश्य छटा

स्थान—चित्तौड़ के किले के भीतर। सूर्यपोल के पास।

समय—सूर्योदय से पहले।

(पत्ता जी समर वेश में सज्जित टहल रहे हैं। पास ही घोड़ा खड़ा है। लड़ाई प्रारम्भ होने में अभी दो घण्टों की देर है।)

पत्ता—(आप ही आप) साढ़े पाँच महीने हो चुके। अभी तक कुछ परिणाम न निकला। साहीदास जी काम आ गये। असंख्य सैनिक स्वाहा हो गये। कई पुरुष पुङ्गव बलि चढ़ चुके। मेरी माता, मेरी पत्नी को साथ ले कर, वीर वेश धारण कर के अनेक शत्रुओं को यमलोक पहुँचा कर, राजपूत जाति का मुख उज्ज्वल करती हुई, सदा के लिए, वसुन्धरा की गोद में सो गई। अब मेरी बारी है। मेरे पिता गत जौहर में काम आ चुके। अब मेरे लिए संसार में बचा क्या है? कुछ नहीं। मेरे भावी सुख की आशा-लता की केवल स्मृति रह गई है। ओह! कितने मधुर, कितने विश्वास भरे, कितने आकर्षक थे उस के वे शब्द! उस का सिर मेरे बाएँ कन्धे पर था। अभी तक मालूम होता है, मानो उस के कोमल कर मुझे जकड़े हुए हैं। उसने कहा था, मैं अधिक दिन वियोग न सह सकूँगी। वहाँ का कर्तव्य पूरा कर के शीघ्र ही आना। आज उस घटना को एक महीना हो गया। उस के बाद साहीदास जी ने मेरे कन्धों पर सैन्य-सञ्चालन का भार डाल

दिया। इसे पूरा न कर के शीघ्र में कैसे चला जाता। प्रिये, तुम जहाँ भी कहीं हो देख लो। यह विलम्ब आलस्य के कारण नहीं, किन्तु कर्तव्य पूरा करने के कारण है। आज मालूम होता है कि मैं कल तक......(तुरही का शब्द होता है। पत्ता घोड़े पर उछल कर उसे दौड़ाता हुआ एक ओर चला जाता है।)

(दृश्य-परिवर्तन। समय—सायंकाल के चार बजे। बुर्ज पर राव अर्जुन भाला लिये खड़ा है। नीचे सुरंग में बत्ती लगाने की तैयारी हो रही है।)

आसफ़ खाँ—सरदार बुर्ज पर से हट जाइये। अपने सिपाहियों को हटा लीजिये। हम सुरङ्ग में बत्ती लगा रहे हैं। फ़िज़ूल ही क्यों अपनी जान से हाथ धोना चाहते हैं?

अर्जुन—जनाब आप सपना तो नहीं देख रहे हैं। मालूम है आप को आज से अड़तीस साल पहिले मेरी बहन जवाहर बाई ने सुरंग से हुई दरार की रक्षा करते हुए प्राण दिये थे। आज मैं उस की जगह हूँ। मैं आप को सलाह देता हूँ, आप ही हट जाइये। नहीं तो अभी मेरी कटार आप की छाती में, घुस कर, सुरङ्ग उड़ने से पहिले आप के प्राण पखेरू को उड़ा देगी।

(अर्जुन की फेंकी कटार आसफ खाँ की छाती में लगती है, वह लड़खड़ा कर गिर पड़ता है। और साथ ही सुरंग उड़ने का धमाका होता है। अर्जुन उड़ जाता है। बड़ी दरार पड़ जाती है। शत्रु-सेना घुसने का प्रयत्न करती है। राजपूत भी उन्हें रोकने को टूट पड़ते हैं।)

(दृश्य परिवर्तन। —स्थान लाखोटा बारी के भीतर। समय —दूसरे

दिन सायंकाल के पांच बजे। खून से भीगे हुए पत्ता का प्रवेश।)

पत्ता—(सैनिक से) सूर जी ज़रा जयमल जी को बुला लाइये।

(सैनिक का प्रस्थान)

(आप ही आप) आज जाऊँगा। मेरी प्रियतमा बाट जोह रही है। आज मेरा कर्त्तव्य समाप्त हो चुका। मैंने नीचे उतर कर हमला किया, अकबर बच गया। उस का पूर्व जन्म का कोई पुण्य आड़े आ गया। अगर मेरा वह हाथ भर पूर बैठ जाता तो बादशाह सलामत की अर्थी ही दिल्ली पहुँचती। पर उस के कितने ही रक्षक मारे गये। फिर मुझ पर वे सब के सब टूट पड़े। क़िले में आने पर मुझे पता लगा कि मैं मूर्छित हो गया था, उसी अवस्था में यहाँ लाया गया। मेरे बहुत से साथियों ने अपना बलि-दान कर के मुझे बचा कर यहाँ तक पहुँचा दिया। अब आज मुझे उन से, अपनी जन्मभूमि से, अपने स्वामी से, अपने पूर्वजों से—सब से उऋण होना है।

(जयमल का प्रवेश)

पत्ता—लो भाई, आज से सारा उत्तरदायित्व आप के कन्धों पर है। साहीदास जी ने मुझे जो करने को कहा था, वह मैं कर चुका। अकबर याद करेगा, कि एक राजपूत बालक क्या कुछ कर सकता है? उसे यह विजय बहुत ही महँगी पड़ेगी। अब भविष्य में इस की आशा तो कम है, कि वे लोग घेरा उठा कर चले जायँ। हाँ यह सम्भव है, कि आप की अध्यक्षता में एक जौहर-व्रत का पालन किया जाय। अब आप जानें और आप का काम।

(पत्ता अपने कई सौ साथियों के साथ बाहर चला जाता है। और अपने सब साथियों के साथ वहीं काम आ जाता है। दीवारों पर रो सब खड़े खड़े देख कर 'जय पत्ता की' 'जय एक लिंग की' 'जय मेवाड़ की' पुकारते हैं।)

(दृश्य-परिवर्तन। स्थान—अकबर का खेमा। समय—दूसरे दिन के ग्यारह बजे।)

अकबर—क्यों राजा साहब पत्ता की उम्र क्या है ?

भगवान दास—सिर्फ सोलह साल।

अकबर—ऐं ! सिर्फ सोलह साल !

भगवान दास—हाँ, जहाँपनाह, सिर्फ सोलह साल !

अकबर—अजब का बहादुर है, वह। कल मारता-काटता मेरे पास आ पहुँचा। शेर की तरह मुझ पर टूट कर गिरा। अगर उन सिपाहियों ने अपने ऊपर उसके वारों को न झेल लिया होता तो मेरा तो काम ही तमाम हो चुका था। उन में से कितने सिपाही बचे हैं, हसनखाँ ?

हसनखाँ—सिर्फ एक, अहमदबेग, जहाँपनाह।

अकबर—उसे दस हजार इनाम में दे दिये जाएं। और उसका ओहदा बढ़ा दिया जाय।

हसनखाँ—बहुत खूब, जहांपनाह।

अकबर—पत्ता की लाश तो भिजवादी गई न ?

हसनखाँ—जी हां, जहांपनाह।

अकबर—क्या, राजपूत लोग लड़ते वक्त सुरङ्ग से उड़ी हुई

दीवार भी जोड़ते जाते हैं ?

भगवानदास—जी हां, जहांपनाह ।

अकबर—अच्छा आज एक सुरङ्ग और उड़ाओ ।

हसनखां—बहुत खूब, जहांपनाह ।

(दृश्य-परिवर्तन । स्थान—सुरङ्ग से उड़ी हुई दीवार । समय—रात के ग्यारह बजे । जयमल अनेक सिपाहियों एवं मशालचियों के साथ किले की दीवारों की मरम्मत करवाता हुआ घूमता है ।)

जयमल—शाबाश, मेरे वीरो, शाबाश । गोली का जवाब गोली से, तीर का तीर से, गोले का गोले से, गोफन का गोफन से दिये जाओ । तुम्हारे पूर्वज, अग्नि-स्नाता सतियां, यह विजय-स्तम्भ, अर्बली की पर्वतमाला, आकाश के ग्रह-नक्षत्र सब उत्सुक नेत्रों से तुम्हारे हस्त लाघव को देख रहे हैं । पत्ता जी ने तुम्हारी वीरता पर विश्वास रख कर सानन्द अपना बलिदान कर दिया है । तुम्हारी वीरता ने ही मेरा भाल गर्व से ऊपर उठा दिया है । सैकड़ों शताब्दियों तक वीरता के पुजारी तुम्हारा गुणगान करते रहेंगे ।

(एक बड़ी सी दरार पर आकर) वीरो, महामाया भगवती मुण्डमालिनी आज तुम पर प्रसन्न हैं । तुमने अपने और अपने शत्रुओं के रक्त से उन्हें तृप्त कर दिया है । पिलाये जाओ ! पिलाये जाओ !! पिलाये जाओ !!! तब तक, जब तक कि भगवती स्वयं ही मुँह न फेर लें । मैया के खप्पर में इतने मुण्ड भर दो कि ढुलक ढुलक कर गिर पड़ने लग जाएँ ।

(दृश्य-परिवर्तन । स्थान—दरार के स्थान पर ही किले के नीचे । अकबर का प्रवेश ।)

अकबर—यह क्या इस दरार पर भी मरम्मत की जारही है ? यानी कल तक सब दुरुस्त हो जायगा; और हमें फिर से सुरंग उड़ानी पड़ेगी । रोज़ रोज़ यही ढर्रा चला आ रहा है । यों तो सारी ज़िन्दगी बीत जाएगी । अरे यह ऊँचा सा आदमी कौन खड़ा है ? क्या कोई सरदार है ? शायद यही लोगों को जोश दे कर लड़ा रहा है ।

आसफ़खां—जी हां, जहांपनाह, यह जयमल है । पत्ता के बाद सरदार यही बनाया गया है । जब तक यह ज़िन्दा है, तब तक हमारी सारी कोशिशें नाकामयाब होती रहेंगी ।

अकबर—हां यही बात है ? अच्छा तो लो ।

(अपनी बन्दूक दाग देता है । गोली जयमल की टांग में लग जाती है, और वह घायल हो कर लड़खड़ा कर गिर पड़ता है क़िले में हाहाकार मच जाता है और सिपाही घबरा जाते हैं ।)

जयमल—(लेटे ही लेटे) मशालें बुझादो । अन्धेरे में काम किये जाओ । घबराओ मत मैं ज़िन्दा हूँ । मैं लड़ूंगा । दो घण्टे में सारा काम पूरा कर डालो । कोई छोटी सी भी दरार न रहने पाए । सब की मरम्मत कर डालो । एक भी बाहर वाले को ऊपर मत चढ़ने दो । मुझे सूरज पोल पर ले चलो । और सब सरदारों को वहीं एकत्र कर दो । घबराने से सारा बलिदान व्यर्थ हो जायगा । अब वही मुहूर्त आ गया है, जिसके लिये हमारी माता

जी ने हमें दूध पिलाया है।

(जयमल सूर्यपोल पर पहुंचा दिया जाता है। और सारे सरदार उस के आस पास एकत्र हो जाते हैं। सब के चेहरों पर उदासी और घबराहट के चिन्ह है।)

जयमल—मेरे वीरो, लो आज वह समय आ गया, जिस की बाट राजपूत जोहा करता हैं। मेरे पैर में गोली लग गई है। गोली अकबर ने मारी, जब मैं मशालों के उजाले में दीवार की बड़ी दरार की मरम्मत करा रहा था। मैंने अकबर को देखा। मुझे यह पता यह नहीं था, कि वह इतनी ओछी तबियत का है। मैंने समझा वह भी शायद अपनी सेना का कुछ प्रबन्ध कर रहा होगा। पर उसने गोली मार दी। घाव तो मुझे पहिले ही कई लगे हुए थे। और यह गोली पैर में लगी है। चाहता तो मैं भी अकबर को गोली मार सकता था। परिणाम जो कुछ हुआ आप के सामने है।

करणसिंह—तो चिंता की क्या बात है! हम में से किसी एक पर उत्तरदायित्व डाल कर आप विश्राम करिये। जब तक हम में से एक भी जीवित रहेगा, हम लड़ेंगे। मेवाड़ में जब तक एक भी वीर जीवित रहेगा तब तक लड़ेंगे।

जयमल—नहीं भाई मैंने आप लोगों को इस लिए नहीं एकत्र किया है। मैं अब विश्राम नहीं चाहता। मैं तो इस महा यज्ञ की पूर्णाहुति चाहता हूं। युद्ध बरसों तक इस प्रकार खतम नहीं होगा। दीवान जी तो बाहर से सहायता भेजते रहेंगे। पर, परि-

परिणाम क्या होगा ? यही न कि हमारे धन तन का व्यर्थ नाश हो । इस से लाभ ? मुझे स्पष्ट मालूम हो रहा है, कि मुगलों से शताब्दियों तक हमारा संघर्ष चलता रहेगा । और यह भी स्पष्ट है, कि उन के पास साधन हमारी अपेक्षा बहुत अधिक है । भारत के दुर्भाग्य से आज राजस्थान की शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हैं । निकट भविष्य में एक होने की सम्भावना भी नहीं । ऐसी दशा में मुझे तो यही ठीक जँचता है, कि चित्तौड़ को बलिदान कर के सारे मेवाड़ को बचा लिया जाय । दीवान जी बाहर हैं ही, वे पीछे से सब ठीक कर लेंगे । हमें गौरव इस बात का है, कि हमने शत्रुओं के आगे सिर नहीं झुकाया । उन के सलामत कूचे व्यर्थ हुए । उन की सुरङ्गें बेकार हुईं । वे हमारे दुर्ग का तोरण द्वार तो क्या एक छोटी सी बारी भी न तोड़ सके । हमारी वीरता, त्याग, और उत्सर्ग की एक मात्र कसौटी रही है । अतः मेरे विचार से तो हमें अब कल जौहर करना चाहिये । अधिक वाद-विवाद का तो समय है नहीं । हम लोगों को शीघ्र ही निर्णय कर डालना चाहिये ।

करणसिंह—आप की आज्ञा हमारे सिर माथे पर । हमें वाद-विवाद करने की आवश्यकता नहीं । हम तो आप की आज्ञा पालन करना चाहते हैं ।

जयमल—अच्छा ठीक । अभी बारह बजे हैं । साढ़े पाँच बजे तक हमें सब तैयारी कर डालनी चाहिये । छः बजे सब फाटक और बारियाँ खोल दी जायें । हाँ सब से पहिले दीवान जी के

पास एक सैनिक भेज दिया जाय। और उन्हें कहला दिया जाय, कि अब वे यहाँ किसी भी प्रकार की सहायता न भेजें। एक एक गाँव के लोगों को जूझ मरने के लिये तैयार कर दें। जहाँ तक मेरा ख़याल है, चित्तौड़ हस्तगत कर के मुग़ल सेना लौट जायगी। ऐसा न कर के अगर वह आगे अग्रसर हो, तो एक एक गाँव में उस से लोहा लिया जाय। एक एक गाँव में जौहर हो।

(एक सैनिक प्रणाम करके चला जाता है। सब लोग 'भगवान एक लिंग की जय' चिल्लाते हैं)

कल्यासिंह—सब द्वारों और बारियों का प्रबन्ध भी पहिले कर दीजिये।

जयमल—हाँ हाँ। दरवाज़ों पर एक एक हज़ार और बारियों पर पाँच पाँच सौ सैनिक रहें। दो हज़ार का एक एक जत्था सूर्य पोल के पास तैयार रहे। और जहाँ से अकबर घुसे वह वहीं शीघ्र जा पहुँचे।

(एक सैनिक प्रणाम कर के चला जाता है। सब लोग 'मेवाड़ के विजयी झण्डे की जय' चिल्लाते हैं।)

राव सुरजन—अब पहिले स्त्रियों का प्रबन्ध हो जाना चाहिये।

जयमल—यह कार्य महारानी जी और झाली राम की रानी के सुपुर्द कर दिया जाय।

(एक सैनिक प्रणाम कर के चला जाता है। सब लोग 'मेवाड़ की सतियों की जय' चिल्लाते हैं।)

जयमल—राणाजी की ड्योढ़ी पर तीन हज़ार सैनिक आ डटें। प्रत्येक मंदिर पर सौ सौ जवान रहें। कुओं का जल विषैला कर दिया जाय। चांदी सोना रुपया पैसा माणिक मोती हीरा पन्ना—सब नाश कर दिया जाय। जो जब, जहां जिस तरह से बने अपने शत्रुको तलवार के घाट उतारे। भर सक प्रयत्न किया जाय, कि अकबर यहां से जीवित न लौटने पाय।

करणसिंह—अवश्य, अवश्य! यदि उसका कोई बड़ा पुण्य आड़े न आगया तो, वह जीवित नहीं लौटेगा।

जयमल—अच्छा चार बजे चिताओं को प्रज्वलित कर दिया जाय।

(सब लोग 'महाकाली मुन्ड मालिनी की जय' चिल्लाते हैं।)

जयमल—अभी दो बजे हैं। दो घंटे तक सब परस्पर अंतिम बिदा ले लें, या जिससे जो कुछ कहना सुनना हो कह सुन लें। ठीक चार बजे सब अपने अपने स्थान पर उपस्थित हो जायं। हां और जो कोई बाहर जाना चाहता हो तो अभी ही गुप्त मार्ग से चला जाय।

एक सैनिक—ऐसा कायर कोई नहीं है।

दूसरा सैनिक—ऐसा कुलांगार कोई नहीं है।

तीसरा सैनिक—मेवाड़ में ऐसे बच्चे पैदा नहीं होते।

चौथा सैनिक—मेवाड़ की सिंहनियाँ ऐसे गीदड़ नहीं पैदा करती।

(सब चुप चाप अपने अपने काम से लग जाते हैं।)

(दृश्य-परिवर्तन। समय—चार बजे दिन। अकबर अग्नि की लपटें देख कर चकित होता है।)

अकबर—यह क्या ! यह आग कैसी ! इतनी ऊँची लपटें तो मैंने पहले कभी नहीं देखीं।

(भगवानदास का प्रवेश।)

अकबर—राजा साहब यह क्या तमाशा है।

भगवानदास—जहाँपनाह यह तमाशा बड़ा खौफ़नाक है। इतना खौफ़नाक, जिसे देख कर खुद मौत थर्रा उठे। हां जिनको देखने और करने की आदत है उनकी बात अलग है। अब सुबह क़िले के दरवाज़े खुलेंगे।

अकबर—अरे वाह, तब तो सात, साढ़े सात बजे तक हम राणा के महल में दाखिल हो जाएंगे। आशा तो यही करेंगे।

भगवानदास—नहीं जहांपनाह, साढ़े सात बजे तो रहा, दो बजे तक भी पहुँच सकें तो ग़नीमत। मेरा खयाल है, चार बजे से पहिले हम किसी भी हालत में नहीं पहुँच सकते। हममें से भी कइयों को अब आखिरी बार जहांपनाह के दर्शन कर लेना चाहिए।

अकबर—क्यों ?

भगवानदास—जहांपनाह, आपके इस क्यों का जवाब कल आपको चित्तौड़ का एक एक ज़र्रा ही दे देगा। जहांपनाह अम्बेर और मेवाड़ में ज़मीन और आसमान का अन्तर है।

(दृश्य-परिवर्तन। स्थान—सूर्यपोल। समय—साढ़े पाँच बजे। जयमल अपने एक रिश्तेदार के कन्धे पर चढ़ा हुआ है। सब जयमल की आज्ञा की प्रतीक्षा में हैं।)

जयमल—हां, तो अब सब हो चुका मैंने जो जो बातें कहीं थीं वे पूरी कर दी गईं? अच्छा तो अब फिर क्या देर है? दरवाजे खोल दो। बारियां खोल दो। जूझ पड़ो उन्मत्तों की तरह। टूट पड़ो भूखे सिंहों की तरह। तलवारें चलाओ, जैसे किसान दरांती चलाता है। शत्रुओं की खोपड़ियां काटो, जैसे किसान गाजर-मूली काटता है। गरजो, जैसे सिंह अपने शिकार को देख कर गरजता है। बस अब तुम्हारे आगे उद्देश्य एक है—शत्रुओं का संहार करना। और अपना खुद का बलिदान करना। देखो, इस केसरिया बाने की लाज मत गंवाना। देखो, मा का दूध मत लजाना। 'जय, भगवान एक लिंग की जय!' जय, महाराजा उदयसिंह की जय', 'जय, बाप्पा रावल और समरसी की जय,' 'जय कुम्भा और सांगा की जय', 'जय मैया पद्मिनी की जय', 'जय सती कर्मवती और जवाहर बाई की जय', 'जय मेवाड़ की सतियों की जय।'

(सब दरवाजे और बारियां खोल दी जाती हैं। मेवाड़ी सेना के कुछ सैनिक बाहर निकलते हैं। थोड़ी देर में शत्रु के सैनिक भी भीतर आने का प्रयत्न करते हैं। और मारकाट हो जाती है।

(दृश्य-परिवर्तन। समय—सायंकाल के पांच बजे। स्थान—राणा जी का महल। दशा—घायलों और लाशों का ढेर चारों ओर पड़ा हुआ है। ड्योढ़ी के पास एक चबूतरे पर अकबर अपने सरदारों के साथ

खड़ा हुआ है। सब के सब खून से इतने रँगे हुए हैं, कि पहचाने नहीं जाते।)

भगवानदास—क्यों, जहांपनाह, देखा आपने मेवाड़ को? कल की आपकी 'क्यों' का जवाब मिल गया?

अकबर—क्यों राजा साहब, आपने हमारा स्वागत ऐसा क्यों न किया?

भगवानदास—(जोश से) जहांपनाह, याद मत दिलाइये। राजपूताने के भाग्य मन्द थे। हम आपकी मीठी बातों के फन्दे में फँस गये। जहांपनाह, अब तो आपको अम्बेर और मेवाड़ का भेद मालूम हो गया?

अकबर—हो गया। राजा साहब, हो गया। यह फ़तह दर असल बहुत महँगी पड़ी। सिपाहियों को लूट में क्या मिला?

आसफ़खाँ—सब रो रहे हैं, जहाँपनाह। जल भुन कर गालियाँ दे रहे हैं।

दृश्य सातवां

स्थान—मेवाड़ का एक गाँव, देवी का मन्दिर।

समय—सायंकाल के चार बजे।

(चित्तौड़ से आये हुए कुछ सिपाही, और एक चारण, मंदिर के चबूतरे पर बैठे हुए छोटे बड़े ग्राम वासियों से बातें कर रहे हैं।)

मुखिया—हाँ, तो आप लोग चित्तौड़ से आ रहे हैं? कहिये लड़ाई के क्या हाल हैं?

पहला ग्रा. वा.—इस गाँव से रोज रसद सिपाही आदि जाया करते थे! सिर्फ़ एक या दो दिन से नहीं गये। क्या बात है? मालूम होता है, लड़ाई बन्द हो गई।

दूसरा ग्राम वासी—तो जीत तो हमीं लोगों की हुई होगी?

तीसरा ग्राम वासी—तब तो अब राणा जी इसी गाँव में से होते हु चित्तौड़ जाएँगे?

एक सैनिक—(एक साँस में) जीत तो शत्रुओं की हुई है, पर वे जीत कर भी हारे हैं, और हम हार कर भी जीते हैं। अकबर का सिर गर्व से तनने के बजाय पछतावे से लटक सा गया।

प. ग्रा. वा.—यह क्या बात है? आप का कहना हमारी तो समझ में नहीं आया। साफ कहिये।

दूसरा सैनिक—साफ़ कहने की इस में बात ही क्या है? मेवाड़ ने तीसरी बार जौहर किया है।

दूसरा ग्रा० बा०—जौहर! जौहर!! जौहर!!!

दूसरा सैनिक—हाँ, हाँ, जौहर—जौहर—जौहर। इस में घबराने की बात ही क्या है। मेवाड़ के नर केसरियों ने तीसरी बार जौहर किया है। क्या, जौहर मेवाड़ियों के लिए कोई नई बात है?

दूसरा ग्रा० बा०—नहीं भाई, मैं जौहर शब्द से घबराता नहीं हूं। मेरे आश्चर्य का कारण तो यह है, कि अभी तो हमारे पास धन, जन और हथियार कम नहीं हुए, फिर इतनी जल्दी जौहर क्यों किया गया?

प० सैनिक—हमारे सरदार जयमल ने, इस विचार से कि, लड़ाई शीघ्र समाप्त होगी नहीं, अकबर के पास हम से ज्यादा साधन हैं दो तीन पीढ़ी तक लड़ना पड़ेगा, सन्धि हो नहीं सकती थी, फिर व्यर्थ की शक्ति व्यय से लाभ कुछ नहीं। अतः जौहर करना ही उचित समझा गया।

दूसरा सैनिक—अकबर को लेने के देने पड़ गये। उसे छटी का दूध याद आगया। वह कई बार मरते मरते बचा। वह क़िला तोड़ न सका। उस की सुरंगें व्यर्थ गईं। उस के सलामत कूचे किसी काम न आये। उस का रुपया बहुत ख़र्च हुआ। उन की बहुत सी सेना और बहुत से अफ़सर मारे गये। कई तोपें बेकार हो गईं। असंख्य पशु मारे गये। इतने पर भी वे

क़िले के भीतर नहीं घुस सके, जब हमने सिंहों की तरह भगवान एकलिंग और 'मेवाड़ के राणा की जय' का घोर नाद करते हुए, दरवाज़ा खोल दिया।

तीसरा ग्रा० वा०—हाँ, ऐसा हुआ! भाग्यशाली हैं आप, कि आपने उसमें क्रियात्मक भाग लिया।

चौथा ग्रा० वा०—भाई वहाँ का कुछ और हाल तो सुनाइये,!

पांचवां ग्रा० वा०—अरे पहिले इन्हें आराम करने दो। कपड़े बदलने दो। इन के भोजन का तो प्रबन्ध करो। ये लोग अभी थके माँदे और चले आ रहे हैं। देखो तो, इन के कपड़े खून से कैसे रँगे हुए हैं।

तीसरा सै०—भाइयो, इस प्रकार की खातिरदारी का यह समय नहीं है। हमे तो अभी गाँव गाँव में सरदार जयमल की आज्ञा, और जौहर का सन्देश पहुंचाना है। कपड़े यही रहेंगे। जब हमारे सरदार की आज्ञा मे खून है, जब हमारे जौहर के सन्देश में खून है और आग है, तो फिर हमारे कपड़े भी यदि खून से रँगे रहें, तो क्या हर्ज है? खून की होली खेलना और खून से अपने कपड़े रँगना, तो हमारे जीवन के मुख्य कार्यों मे से हैं।

छठा ग्रा० वा०—अच्छा तो जौहर का हाल तो सुनाओ।

पहला सैनिक—हाल यों कुलतो बहुत लम्बा चौड़ा है सारा का सारा हमें मालूम भी नहीं है। कुछ किसी को और कुछ किसी को मालूम है। हां मुख्य २ बातें सभी को मालूम हैं। और हमे वक्त भी

थोड़ा है।

सब प्रा० वा०—अच्छा कहिये। जल्दी कहिये।

प० सैनिक—रात को मशालों प्रकाश में सरदार टूटी दीवार की मरम्मत करा रहे थे। उन्हें एक गोली लगी। गोली पैर में लगी थी घोड़े पर चढ़ नहीं सकते थे। परिस्थिति अत्यन्त विकट हो गई थी। उनकी आज्ञा से सिपाहियों ने उन्हें सूरजपोल पहुंचा दिया। वहाँ उन्हों ने सब सरदारों को अपने पास एकत्र किया, उनकी सलाह ली। सबने एक स्वर से जौहर का समर्थन किया फिर फिर सरदार ने सब उचित प्रबन्ध किया। सब महत्वपूर्ण स्थानों पर सैनिक नियुक्त कर दिये गये। कुछ लोगों को उन्हों ने गांव गांव में जाकर अपनी आज्ञा पहुंचाने का कार्य सौंप दिया। फिर ब्रह्ममूर्त में चिताओं में अग्नि दी गई। तीन जगह जौहर की चिताएं बनीं। हजारों सतियों ने अग्नि वरण किया। जौहर की लपटों के प्रकाश से शत्रुओं की छावनी भी जगमगा उठी थीं।

(सब जोश में 'मेवाड़ की सतियों की जय' बोल उठते है।)

फिर सब दरवाजे और बारियाँ खोल दी गईं। सभी ओर से रिपुओं ने घुसने का प्रयत्न किया। पर सभी जगह उन से गहरा मोरचा लिया गया। जब केसरिया वस्त्र धारण किये हुए मेवाड़ी वीर शत्रुओं के झुण्डों पर झपटते थे, तब ऐसा मालूम होता था, मानो शेर और बाघ वन्य पशुओं पर झपट रहे हों। प्रजा ने भी पूरा पूरा भाग लिया। नगर सेठ धनपतशाह अपने अनेक सेवकों के साथ 'गोविन्दश्याम की

के मन्दिर के मुख्य द्वार पर लड़ता हुआ मारा गया। अकबर कई बार मरते मरते बचा। सरदार जयमल, पांव में गोली लगने के कारण घोड़े पर तो चढ़ नहीं सकते थे अतः उनके सम्बन्धी कल्ला जी ने उन्हें अपने कन्धे पर चढ़ा लिया और फिर वे दोनों सूरज पोल पर लड़ते लड़ते काम आये। अकबर ने चिढ़ कर मतवाले हाथियों को हूल दिया। कई हाथी मारे गये।

सब मा० बा०—और भगवानदास और मानसिंह ?

प० सैनिक—हां वे भी अकबर के साथ ही थे। वे भी अनेक बार मरते मरते बचे। लोग कहते हैं कि जब मेवाड़ी सिपाही से उनकी चार आँखें होती उनका चेहरा निष्प्रभ सा हो जाया करता था। दरवाजे सुबह छः बजे खुले थे। अकबर लगभग पाँच बजे राणा जी के महल तक पहुंचने पाया। शत्रुओं को लूट में कुछ नहीं मिला। सब सिपाही हाथ मल रहे थे।

एक बालक—हमारे लिए आप लोग कुछ खिलौना लाए हैं ?

चारण—हाँ बच्चो लो। (चारण अपने घोड़े पर लदे हुए झोले में से दो मुण्ड देता है।) इस प्रलयकाल में इससे बढ़िया खिलौना तुम लोगों के लिये और क्या हो सकता है। लो खेलो। जी भर कर खेलो। और सदा याद रखो कि तुम्हें भी समय पड़ने पर अपने बच्चों को ऐसे ही खिलौने देने पड़ेंगे। कभी मत भूलना, कि ये तुम्हारे देश के शत्रुओं की सेना के सैनिकों के सिर हैं। (बच्चे उन्हें गेंद की तरह उछालने लगते हैं।)

पां० ग्रा० बा०—और वे मुसलमान गोलन्दाज़ तो अपने भाई भाइयों में मिल गये होंगे। उनका अफसर तो इसमाइल था न ?

प० सैनिक—हरे हरे, आप यह क्या कहते हैं। वह बेचारा तो अपने साथियों सहित अन्त तक ईमानदारी से हमारा साथ देता रहा। यह उस की ईमानदारी का ही प्रताप था, कि हम तीन तीन सलामत कूचे और सुरँगों के होते हुए भी अपनी दीवारों की रक्षा कर सके। इसमाइल के सैनिकों की गोलाबारी के ही कारण शत्रुओं के सारे प्रयत्न निष्फल हुए, अकबर इन लोगों पर बहुत जला भुना था। जब वह क़िले में पहुंचा, तो इन्हें ढूंढने लगा। पर एक भी न मिला। वे लोग, मौक़ा देख कर, अपने परिवार वालों की मुश्कें बांध कर शाही सेना के बीच में से निकल गये। शत्रुओं ने समझा हमारे ही आदमी राजपूतों की स्त्रियों और बच्चों को क़ैद कर के लिये जा रहे हैं। इस घटना को सुन कर अकबर के क्रोध का पारावार न रहा। पर इलाज क्या था? आप यह न समझिये, कि कोई आदमी केवल मुसलमान होने से बेईमान हो जाता है, और हिन्दू होने से ईमानदार हो जाता है। देखो हिन्दुओं में भगवान दास और मानसिंह हैं, और मुसलमानों में इसमाइल है। दोनों में दोनों तरह के व्यक्ति हो सकते हैं।

पाँचवां ग्रा० बा०—अच्छा अब सरदार की आज्ञा सुना दीजिये।

प० सैनिक—उन की आज्ञा यही है, कि अगर किसी भी गाँव में शत्रु के सैनिक आजाएँ तो उन से जम कर लोहा लिया जाय। अगर ज्यादा तादाद में हों तो आप भी जौहर करें। हाँ, अगर इसमाइल के सैनिक आजाएँ तो उन्हें न सताया जाय, और उन्हें हर प्रकार की संभव सहायता दी जाय। उन की वर्दी हमारी ही वर्दी जैसी है। हाँ, तो अब हमें दूसरे गाँव में भी जाना है। हमारे पीछे भी कुछ अपने ही सिपाही आते होंगे वे दूसरे गाँवों में जाएँगे। सावधान रहना। अपने पराये को अच्छी तरह समझ कर बरतना। अच्छा तो कविराज जी आप अपना गाना सुनाते चलिये।

चारण—जिसने उन्मूलन कर डाला, रिपुओं का सारा अभिमान।
सब—गाएगा संसार युगों तक, इस जौहर का गौरव गान॥

\+ + +

चारण—काली का श्रृंगार कर दिया, नर मुण्डों की माला से।
जगती-तल जगमगा दिया, हां जिस जौहर की ज्वाला से॥
रिपु-सेना क्या, स्वयं काल भी कांपे जिसकी मारों से।
दसों दिशाएं थर्रातीं, जिसकी भीषण हुङ्कारों से॥
सब—आक्रमण जिसका वज्रपात सा, प्रलयंकर शंकर बलिदान।
गाएगा संसार युगों तक, उस जौहर का गौरवगान॥
चारण—याद रखेंगे जीवन भर वे; रजपूती तलवारों को।
भूल सकेंगे अरे वे कभी; मेवाड़ी ललकारों को॥

पीछे उनकी याद रखेगी, उन भरपूर प्रहारों को ।
छाती भी न भूल पायेगी कभी हमारे वारों को ॥
वीरों को अदम्य कर देता, जिसका आदि मध्य अवसान ।
सब—गाएगा संसार जुगों तक, उस जौहर का गौरव गान ॥
चारण—धन्य धन्य जौहर व्रतियों के प्रलयंकारी प्राणों को ।
धन्य धन्य इन मेवाड़ी, श्यामलों के बलिदानों को ॥
धन्य धन्य उन वीराओं के जौहर चिता प्रयाणों को ।
धन्य धन्य असिप्रेमालिंगन, जय जय शोणित स्नानों को ॥
लहर लहर कर लाल पताका, गाती है मेवाड़ महान ।
सब—गाएगा संसार जुगों तक, इस जौहर का गौरव गान' ॥

(गाते गाते चारण और सैनिक गांव की सीमा से बाहर चले जाते हैं । लड़के उन दोनों मुण्डों को पैरों से लुढ़काते हुए और ग्रामवासी अनेक प्रकार का जय घोष करते हुए, गाँव में आ जाते हैं ।)

छठी ज्वाला

दृश्य पहला

स्थान—खैबर की घाटी के पास जमरोद; राठौरों की छावनी।

समय—सायंकाल के ६ बजे।

(कपिला अपनी छत पर बैठी गा रही है। चारों ओर पहाड़ हैं। पहाड़ों की ओट में चन्द्रमा उदय हो रहा है। गायन के प्रारंभ में ही चुपके से दुर्गादास प्रवेश करते हैं। कपिला को गाती देख कर, उससे दूर ही चुप चाप खड़े रह कर, सुनते हैं।)

राग माड़

मेरा मरुधर देश महान, मेरा मरुधर देश महान।

नील गगन ने तान दिया है जिस पर नील वितान।

तारे टिमि टिमि जोति जगावें निर्मल विद्यु समान।

सूरज चांद नखत मिल गावें, निस दिन गौरव गान।

सागर तटनी पेड़ लगाए, पर्वत देवें कान॥ मेरा॥

आती जाती सारी ऋतुएं, करती इसे निहाल।

वीरों के वर्ण-शोण-तिलक से, जिसका रंजित भाल॥मेरा॥

सावन भादों की हरियाली हो जिस पर बलिहार ।
केकी केका कूजें प्यारी, दे आनन्द अपार ॥मेरा॥
दूहड़ जोधा से रणमाते, औ' जसवंत महान ।
जिनकी गाथा सुनते गाते होते पागल प्राण ॥मेरा॥
खेल हंसी में गादी थापी, छार करी रिपु भीर ।
पूत लड़ैगा रण-चंडी का, भका बांका वीर ॥मेरा॥
सर्व सहा धरती धस जावे, सेस उठे भकभोर ।
समर तुरग चढ़ एड़ लगादे, रण बंका राठौर ॥मेरा॥

(गायन समाप्त होते ही दुर्गा दास धीरे-धीरे आगे बढ़ते हैं । फिर धीरे से उसके पास कंधे पर हाथ रख देते हैं ।)

कपिला—(चौंक कर) कौन ?

दुर्गा दास—मैं कपिला ।

कपिला—आप इस प्रकार कबसे खड़े खड़े मेरे संगीत को सुन रहे हैं । यह तो सरासर चोरी है । आप जैसे वीरो को यह आदत कब से लगी ?

दुर्गा दास—उसी दिन से मेरी रानी, जिस दिन तुमने मुझे अपने दिल का चोर कहा था । मुझे बड़ा गौरव मालूम हुआ । मैं ने अपने को धन्य समझा । हमारे भगवान कृष्ण तो माखन चुराते थे । माखन साकार वस्तु है । अतः वे पकड़े जाते थे दिल निराकार वस्तु है । अगर तुम में दिल हो, और उसे मैं चुरा लू तो तुम

ही पकड़ सकती हो। हर कोई नहीं। निराकार चीज का चोर पकड़ा जाना असंभव बात है। तो आज मैंने सोचा कि जब उस दिन दिल का चोर तो बन ही चुका हूँ, तो आज थोड़ा सा तुम्हारा स्वर ही क्यों न चुरा लिया जाय।

कपिला—चलो हटो। आप तो चापलूस चूड़ामणि हैं।

दुर्गादास—और मैंने यह भी सोचा, यदि तुम्हारा स्वर मैं न चुरा लूंगा, तो वह यह देखो सामने इस खैबर के दर्रे में गूंजता हुआ उस पार चला जायगा।

कपिला—अजी हटो, आपकी बातों का अर्थ ही मेरी समझ में नहीं आता।

दुर्गादास—अरी मेरी भोली रानी, अगर तुम मेरी बातों का अर्थ ही नहीं समझती तो तुमने उस दिन मुझे अपने दिल का चोर किस प्रकार बना दिया। जब कोई दिलवाला जीव किसी दूसरे जीव की बातों का भली प्रकार अर्थ समझने लग जाता है, तभी उसके दिल की चोरी हो सकती है। नहीं तो नहीं। दिल की चोरी की दुर्घटना मेरे विचार से सदुघटना ...

कपिला—ओ हो, आप से तर्क करना और अपने सिर पर विपत्ति मोल लेना एक ही बात है। चांदनी रात हो, छत हो, एकांत हो, फूलों की भीनी भीनी सुगन्ध आरही हो, हवा अपनी मन्द गति से, गिरिश्रृंगों से टकराती हुई डोल रही हो और आप को महाराज का कोई काम करना बाकी न हो, तो

आप इसी तरह बहकने लगते हैं। और तर्क करना तो जानते ही नहीं। अपनी ही अपनी गाए जाते हैं।

दुर्गादास—जैसे पुरुष और स्त्री की बनावट में भेद है, वैसे ही उन की तर्क प्रणाली में भी भेद है।

कपिला—फिर वही बात! देखो.........................

(दासी का प्रवेश)

दासी—अन्नदाता, महाराज के यहां से बुलावा आया है। उन की तबीयत अभी अभी अधिक बिगड़ गई है। जल्दी पधारिये।

(दासी चली जाती है। दुर्गादास भी चले जाते हैं।)

कपिला—जाओ, मेरे नाथ-मेरे प्राण, जाओ। आप के भाग्य—नहीं नहीं मेरे भाग्य मे सुख नहीं बदा है। महाराज आप के और आप महाराज के बिना नहीं रह सकते। आप यन्त्र की तरह काम करते हैं; पृथ्वी की तरह घूमते हैं। आप के जीवन में, मालूम होता है, पूर्ण विराम के सिवा, एक भी छोटा मोटा विराम नहीं है। अब तो मैं भी आप की ही तरह होती जा रही हूँ।

[कमरे में चली जाती है।]

(दृश्य-परिवर्तन। महाराज जसवंतसिंह अपनी शैया पर लेटे हैं। सब परिवार के लोग और सरदार आदि आसपास एकत्र हैं। सब उदास हैं।)

जसवंतसिंह—(धीरे से) दुर्गादास आगये ?

दुर्गादास—हाँ महाराज, उपस्थित हूं, आज्ञा !

जसवंत—आज्ञा का समय गया। अब तो प्रार्थना की बारी है। जीवन भर आज्ञा करता रहा, आप सब लोगों पर। अब तो प्रार्थना करने की बारी है। अन्तिम समय की प्रार्थना आज्ञा से भी अधिक मान्य और प्रभाव-शाली होती है ?

दुर्गादास—(भर्राई हुई आवाज़ से) यह क्या कह रहे हैं, आप ?

जसवन्त०—देखो, अधीरता से हानि होगी। धीरज रखो। तुम्हें मारवाड़ तक पहुंचना है। वह सैकड़ों मील दूर है। रास्ते में दिल्ली है। और तख्त पर औरंगजेब !

दुर्गादास—हाँ, महाराज कहिये। मैंने अपना दिल संभाल लिया है।

जसवंत०—हाँ, तो देखो, एक बात तुम्हें याद है ? एक बार हम सब शिकार खेलने गये थे। साथ में तुम भी थे ?

दुर्गादास—हाँ, महाराज याद है—अच्छी तरह। आबू के पास। जोधपुर और सिरोहीकी सीमापर। आपने एक बहुत बड़ा शेर मारा था। शिकार के बाद मैं सो गया था। बस यही याद है।

जसवन्त०—उसके बाद की एक छोटी सी बात और है, जो मैं ने तुमसे उस समय कहने के लिए लोगों को मना कर दिया था। वह अब तुम से कहूंगा।

दुर्गादास—महाराज आपको बोलने में कष्ट हो रहा है।

जसवन्त०—नहीं। अच्छा सुनो। जब तुम पेड़ के नीचे सोये थे। तुम्हारे चेहरे पर धूप आगई थी। मैंने अपने दुपट्टे से तुम्हारे मुँह पर छांह की—तब तक जब तक कि सूरज और तुम्हारे बीच में पेड़ों ने आकर छांह न करदी।

दुर्गादास—महाराज, मैं..........

जसवन्त०—सुनो देखो। मेरे इस कार्य से लोगों को आश्चर्य हुआ। तब मैंने उन से कहा, कि जैसे मैंने आज इस पर छांह की है, वैसे यह समय आने पर मेरे राज्य पर आपत्ति के समय, छांह करेगा—उसे बचायेगा।

दुर्गादास—महाराज मैं.................

जसवन्त०—सुनो, मेरी बात सुनो। मैं ज्यादा देर नहीं बोल सकूँगा। कुछ तो मेरे अस्वाभाविक अहंकार ने, कुछ राजपूतों की फूट ने, कुछ भारत के मन्द भाग्य ने, मेरे देखते देखते, इस मुगल राज्य को तहस नहस न होने दिया। पर जड़ हिल चुकी है। यह नाश होगा और अवश्य होगा। सोचा था, यहां से लौट कर, राजपूत और मराठा शक्ति को मिला कर, मुगल राज्य का उन्मूलन कर डालूँगा। पर इसका श्रेय मुझे नहीं मिलना था।

दुर्गादास—महाराज, मैं आया रहते..........................

जसवन्त०—देखो, पृथ्वीसिंह—मेरे बुढ़ापे की आशा औरङ्गज़ेब की द्वेषाग्नि में—पड़ गयी। अब ये दो रानियाँ गर्भवती हैं। आसन्न प्रसवा हैं। औरङ्गज़ेब, अब चुप नहीं रहेगा। वह सारे राज्य को हज़म करने की भरसक कोशिश करेगा। तुम जानते ही हो वह कितना धूर्त है। मज़हब की आड़ लेकर वह सब कुछ कर सकता है। उसके मज़हब की तह में राजनीति के सिवाय और कुछ नहीं है। हाँ तो मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है, कि मेरे राज्य को—मेरे बच्चे को—अपने युवराज को—मेरे वंश की प्रतिष्ठा को बचाना। हर तरह से बचाना। इन सब का भार आप सब सामन्तों पर—खास कर तुम पर है। देखना, ख्यातों में यह न लिखा जाय, कि जसवन्तसिंह के पीछे राज्य निर्बल कन्धों पर आ पड़ा। जसवन्तसिंह का उत्तराधिकारी पिता के अभाव में योग्य न बनाया जासका। तुम्हारी वीरता पर मुझे भरोसा है। तुम्हारी तलवार पर मुझे विश्वास है। तुम्हारे बलिदानों पर मेरा सारा शरीर मन्दिर है। बस, अब विदा! अन्तिम विदा!!

दृश्य दूसरा

स्थान—दिल्ली की एक सड़क।

समय—सुबह के नौ बजे।

(दो मुसलमान नागरिक आपस में बातें कर रहे हैं।)

पहला नागरिक—वाह, भाई वाह। खूब मज़ा है। अहा हा हा।

दूसरा नागरिक—क्यों खोपड़ी खाये जा रहे हो। क्यों इतना हँस रहे हो।

प० ना०—हाँ हँस रहा हूँ। हंसूंगा और फिर हँसूंगा। इस लिए कि बात ही हँसने की है।

दू० ना०—हँसने की क्या बात है अभी? फिजूल ही, ही-ही हा-हा मचा रखी है।

प० ना०—हँसने की बात क्यों नहीं है? मेरे लिए तो हमेशा ही हँसने की बात रहती है। जो तुम जैसे मुहर्रमी पैदाइश हैं, उन के लिए दुनियाँ में कोई बात हँसने की नहीं होती। ईजानिब के लिए तो हर वक्त हँसने का मसाला तैयार रहता है।

दू० ना०—मसलन?

प० ना०—यह भी कोई सवाल है? अच्छा देखो, अभी, यहीं खड़े खड़े, अगर तुम्हारी चाँद पर आसमान से एक पत्थर का जूता आ टपके तो मैं हँसूंगा, और खूब हँसूंगा। और जूता

गिरने से अगर घोड़े की तरह तुम हिनहिनाने लग जाओ तो मेरे पेट में हँसते हँसते बल पड़ जाएंगे।

दू० ना०—तुम अजब अहमक हो, और परले सिरे के मनहूस हो, और हद दरजे के बेवकूफ भी।

प० ना०—जब हँसने की मिसाल दे दी तो गालियाँ देने लग गये। अगर मिसाल न देता तो भी तुम तो गालियाँ देते।

दू० ना०—जब तक तुम अपने हँसने का असली सबब न बतलाओगे तब तक मैं तुम्हें गाली ही देता रहूंगा।

प० ना०—अच्छा देखो। जिस शहर में हम रहते हैं। इसका नाम दिल्ली है।

दू० ना०—हां है। तो इस में हँसी की क्या बात है।

प० ना०—अच्छा, इस पर मुगलों का राज्य है।

दू० ना०—इस में भी मुझे तो हँसने की कोई बात नहीं दीखती।

प० ना०—और तख्त पर औरंगजेब आलमगीर है।

दू० ना०—हँसने की कोई बात नहीं।

प० ना०—और वह हिन्दुओं को फूटी आँख से भी नहीं देख सकता।

दू० ना०—तो फिर।

प० ना०—इस लिये वह मंदिरों को तुड़वाता है। चोटी वालों की चोटी काटता है। हिन्दू राजाओं को किसी न किसी तरह मुल्क अदम को रवाना कर डालता है, हालां कि खुद अभी न

जाने कितने साल दुनिया से लिपटा रहना चाहता है।

दू॰ ना॰—तो इस में हँसी की क्या बात हुई ?

प॰ ना॰—जो राजा मरने में हिचकिचाते या आगा-पीछा करते हैं, उनको—हैं हैं हैं हैं—काबुल भेज देता है। वे वहां मर जाते हैं। जैसे अभी जसवन्तसिंह मर गया।

दू॰ ना॰—तो फिर।

प॰ ना॰—अब उसकी बेवा रानियां अपने बच्चों को लेकर यहां आई हैं। उनके साथ उनके सरदार भी हैं।

दू॰ ना॰—अच्छा तो फिर

प॰ ना॰—अरे मैंने इतनी बातें कहीं उनमें से एक भी हंसने के काबिल नहीं है, तो मालूम होता है, तुम पूरे काफिर हो पूरे मुनकिर हो। तुम्हारे मुँह में पत्थर और दिमाग में गोबर भरा हुआ है।

दू॰ ना॰—देखो जबान संभाल कर बोलो, नहीं तो मारे जूतों के चाँद गंजी कर दूँगा।

प॰ ना॰—मैं तो तबभी हँसूगा। मुझे मारोगे तो और तुम खुद मरोगे तो—हर हालत में हँसूगा।

दू॰ ना॰—देखो फिर मनहूस बात बोले।

(गर्दन पकड़ कर पीठ में घूंसे मारता। दोनों झगड़ा करते करते चले जाते हैं

(दृश्य-परिवर्तन। स्थान दीवाने खास। समय पाँच बजे सायंकाल। औरंगजेब मसनद पर बैठे हैं। पास में तबरखाँ फौलाद खां और दो तीन अमीर उमरा बैठे हैं।)

औरंगज़ेब—तवरखां, यह तो मुग़लसल्तनत की खुश नसीबी ही समझनी चाहिये, कि कुट्टन जमरोद में मर गया। मेरी साज़िश कारगर हुई। मेरा बड़े से बड़ा दुश्मन—मेरा खौफ़नाक दुश्मन उठ गया। उसका बेटा पृथ्वी सिंह तो पहिले ही मुल्के अदम भेज दिया गया। अब राजपूताना में मैं बेखटके अपना काम चला सकूँगा।

तवरखाँ—बजा फ़रमाते हैं, जहांपनाह। आज यहां दिल्ली में, जसवन्त की बेवा रानी अपने बच्चे के साथ आ पहुँची हैं। साथ में राठौर दुर्गादास और दूसरे सर्दार भी हैं।

औरंगजेब—दुर्गादास भी कुट्टन से कम नहीं बल्कि ज़्यादा ख़तरनाक है।

तवरखा—कल ये सब लोग हुज़ूर के सामने आएंगे।

औरंगज़ेब—क्यों ?

तवरखां—जसवन्त के लड़के को, जिसका नाम इन लोगों ने अजीत रक्खा हैं, जोधपुर की गद्दी पर बिठाने का हुक्म जहांपनाह से हासिल करने।

औरंगज़ेब—देखो तवरखां, कुट्टन के लड़के को यहीं रोकना होगा।

तवरखां—क्यों, जहांपनाह, वह तो बच्चा है ?

औरंगज़ेब—तुम हो गधे। सल्तनत के मामलों में तुम ज़रा भी नहीं समझते हो।

तबरखां—जहां पनाह, मैं तो आपका खिदमतगार हूँ।

औरंगज़ेब—अच्छा तो गौर से सुनो। कल जब कुट्टन के सरदार दुर्गादास के साथ दरबार आम में आएं, तो होशियार रहना। दरबार आम के पिछले बाग़ में पांच सौ सिपाही हथियार-बन्द छिपा रखना। समझे, ज़रा भी ग़लती न हो। किले के हर एक दरवाज़े पर दो दो सौ जवान तैनात कर देना। कोतवाल फ़ौलाद खां से कह दो, कि वह पांच हज़ार आदमियों को ले कर तैयार रहे। पांच हज़ार आदमी कटने मरने वाले। और देखो कुट्टन के लड़के और रानी को नूरगढ़ में रखने का बन्दोबस्त कर दो। और सरदार कहां ठहरे हैं ?

तबरखां—राजा रूप सिंह की हवेली में।

औरंगज़ेब—अच्छा, अब तुम जाओ।

(तबरखां जाता है।)

औरंगज़ेब—(अकेला) आज मैं बेखटके सुख की नींद सोऊंगा। जब से तख्त पर बैठा था, तब से इसी कुट्टन काफ़िर ने नाकों दम कर रखा था। बड़ा चलता पुर्ज़ा था। इसने मुझे बहुत सताया। खेजुवा के जंग में मुझे धोखा दिया। मेरी रसद लूट ली। कई बार भरे दरबार में मेरी हतक की। पर मैं ने भी इस के खानदान का सफ़ाया कर डाला। पुश्त की औलाद तक से बदला लिया। वह भी क्या याद रखेगा। वह डाल चला, तो मैं भी पात पात चला। अब कल देखें क्या होता है। यह दुर्गादास अगर कल काबू में आ गया तो पौ बारह। यह

कुट्टन से भी ज्यादा चालाक है। कुट्टन का तो सारा दारोमदार इसी पर था। अगर यह न होता तो कुट्टन बेचारा कुछ था ही नहीं। अच्छा चलो अब कल देखा जायगा।

(कमरे में चला जाता है।)

दृश्य तीसरा

स्थान—दिल्ली, राजा रूपसिंह की हवेली।

समय—सायङ्काल के सात बजे।

(हवेली के पीछे के बाग़ में दुर्गादास टहल रहे हैं।)

दुर्गादास—(आप ही आप) महाराज का सारा जीवन युद्ध करते बीता उन्होंने औरङ्गजेब को सुख की नींद सोने न दिया। बादशाह ने उन्हें इधर से उधर घुमाया। आज यहाँ कल वहाँ। आज इस से लड़ाया, कल उस से भिड़ाया। स्वास्थ कब तक साथ देता ? फिर पृथ्वी सिंह की दुष्टतापूर्ण, गुप्त हत्या ! आप की अनुपस्थिति में जवान बेटे की छल भरी हत्या ! पहाड़ी देश का जल वायु ! इन में एक भी, किसी को भी समय से पहले मारने को बस है। पर महाराज को तो इन सबों ने घेर लिया। (एक गुलाब के फूल को कुछ देर तक चुपचाप देखते रहे।) मेरे जी में रह रह कर यह कसक उठती है कि महाराज ने पहले युद्ध के समय औरङ्गजेब और मुराद की फौज पर एक दम से आक्रमण

क्यों न कर दिया। फिर खेतुवा के युद्ध में रसद लूट कर ही चुप क्यों हो गये ? वे चाहते तो बात की बात में औरङ्गजेब की सारी सेना का नाश कर सकते थे। फिर दक्षिण में शिवा जी को मिला कर ही उन्हों ने अपनी शक्ति क्यों न बढ़ा ली ? (एक गुलाब के फूल को देखते हुए फिर कुछ देर तक विचार मग्न रहते है ।) भारत के भाग्य मन्द थे। अब बादशाह की भी कृतघ्नता देखिये। जिस जसवन्त सिंह से, परोक्ष रूप में ही नहीं, उसे लाभ पहुंचा, उसी का राज्य हड़पने की कोशिश कररहा है। नहीं तो वह राजकुमार को वहीं क्यों रखना चाहता है ? जिस साम्राज्य की नींव जमाने में अकबर की बुद्धिमानी और राजपूतों का रक्त है,मालूम होता है, उस के उखाड़ने में अब औरङ्गजेब की मूर्खता और राजपूतों का रक्त होगा।मालूम होता है, अब राजपूत जाति अपने उस राष्ट्रीय पाप का प्रायश्चित्त कर सकेगी, जो उस ने अकबर की मीठी बातों में आकर कर डाला था । (सामन्तों का प्रवेश ।)

रघुनाथ दास—तो आप ने अब क्या निश्चय किया है ?

दुर्गादास—निश्चय और क्या करना है । औरंगजेब का संदेशा हम सब ने सुन ही लिया है । बादशाह सलामत राजपूतों को समझने में सदा ही असफल रहे हैं। आज का संदेश उन की उसी मनोवृत्ति कापरिणाम है। क्या करें बेचारे ! उन्हें जीवन भर जैसे आदमियों से पाला पड़ता रहा, वैसा ही वे हमें भी समझते हैं ।

महेश दास—पर कल, जब, उनकी सारी कूट भरी बातों के उत्तर में हमारी ओर से उन्हें एक सबल 'नहीं' मिलेगी, तब उन्हें अपने आप पता लग जायगा।

दुर्गादास—यह ध्यान रखना चाहिए, कि हमें अन्त तक अपना व्यवहार नम्रतापूर्ण ही रखना होगा। हमें तो राजकुमार एवं राज्य की रक्षा के लिये अन्त तक अनुनय-विनय ही करना होगा। दरबार आम में हमें अपनी वाक्य शक्ति के सौम्य रूप का ही प्रदर्शन करना होगा।

रणछोड़—हमारे सारे प्रयत्न यदि दरबार में असफल हुए तो फिर हमारी कार्य नीति क्या होगी ?

दुर्गादास—ऐसी दशा में हमारी कार्य नीति वही होगी, जो ऐसे समय सच्चे राजपूतों की हुआ करती है। हमें वही करना होगा, जो ऐसे समय मेवाड़ के लोगों ने किया था। और अकबर के समय ही अगर हम राठौर लोग भी यही कर डालते तो आज हमें यह समय न देखना पड़ता। हमारे दोनों हाथों में तलवारें होंगी। हमारे वस्त्र केसरिया होंगे। दिल्ली की सड़कें राजपूती रक्त से तर होंगी। हमारे खून की धारा जमना की लहरों को रंग देगी। राजकुमार को तो हम अपना सब कुछ होम कर बचा ही लेंगे। अगर, हमारे दुर्भाग्य ने बलहु ही अधिक जोर किया, तो औरङ्गजेब के हाथ लगेगा हमारे युवराज का निर्जीव शरीर। बादशाह सलामत तख्त ताऊस पर बैठे बैठे हाथ मलेंगे। दीवाने खास में बाल नोचेंगे। मारवाड़ का युवराज

जसवन्त का पुत्र, जोधपुर का वास्तविक अधिकारी औरङ्गजेब के पंजे मे न आ सका। उस दृश्य को तो सोचो, जब हम मुट्ठी भर आदमी, अपने से कई गुने शाही लश्कर को, मारते काटते, चीरते फाड़ते उसी की राजधानी मे से निकल जाएँगे।

महेशदास—पर यहाँ, इतनी चन्दन की लकड़ियाँ कहाँ से आएँगी ? जौहर की चितायेँ भी तो छोटी नहीं होतीं !

दुर्गादास—भाई अभी तक तुम जौहर का तथ्य ही नहीं समझे। जौहर का अर्थ है, अपना और अपने शत्रुओं का सर्व नाश। युद्ध में, शत्रु की विजय होने पर भी उसे पराजय में बदल देना। विजेता को अन्त में पछताना पड़े। न सही चंदन की लकड़ियां। बारूद घर में बारूद तो पर्याप्त है न ? आप लोगों की तलवारों की धार तो तीखी है न ? बस, जौहर करने का तो पूरा सामान है हमारे पास।

रघुनाथदास—तो दरबार मे समय कितना लगेगा ? बारह बजे हमें बुलाया गया है। एक बजे बादशाह के सामने जायेंगे।

दुर्गादास—कम से कम दो घण्टे तो लग ही जायेंगे। बादशाह सलामत सब कुछ होते हुए इतने बच्चे भी नहीं हैं, कि जल्द ही अपना असली भेद प्रगट करदें। खूब इधर उधर की बातें करेंगे। महाराज के गुण गान से आकाश पाताल एक कर देंगे। हार्दिक समवेदना प्रगट करेंगे। संभव है दो चार आंसू भी बहा दें। फिर धीरे धीरे अस्पष्ट भाषा में अपना मतलब कहेंगे। फिर हम लोगों के आगे बड़े बड़े लालच रखेंगे फिर

धमकियों की बारी आएगी। तब कहीं जाकर इस नाटक की समाप्ति होगी।

महेशदास—अगर हम लोगों को वहीं पकड़ने का प्रयत्न किया गया तो ?

दुर्गादास—जहां तक मेरा अनुमान है, यह हददर्जे की मूर्खता न की जायगी। और अगर की ही जाय, तो बादशाह सलामत भी आगरे के अमरसिंह कांड की पुनरावृत्ति ही देख लेंगे। आप छलांग मारने में उस्ताद तो हैं ही। एक छलांग बस होगी। जा पहुंचियेगा। पीछे वालों को हम संभाल लेंगे। रणछोड़दास जी को यहीं छोड़ जायेंगे। वह बुद्धिमान है। वे गौरव से जीने का ढंग और प्रतिष्ठा से मरने का रास्ता जानते हैं

रणछोड़दास—कुछ स्त्रियां चिताओं पर, कुछ बारूद से, और कुछ तलवारों से, जो जिस ढङ्ग को पसन्द करें। राजकुमार मिठाई के झाबे में, और शहर के बाहर संपेरे की कावड़ में। यह तो कल बहुत ही जल्दी करना होगा। केवल राजमाता पुरुष वेश में, घोड़े पर सवार, सशस्त्र होंगी हमारे साथ। संयोग से समय आने पर एक तलवार का हाथ उन पर भी। ठीक है न ?

दुर्गादास—बहुत ठीक। किले पर चढ़ने वाला झंडा टुकुर टुकुर देखेगा। यह कुतुब मीनार देखेगा। जमना की लहरें देखेंगी। दिल्ली के निवासी देखेंगे, कि हम मुट्ठी भर राजपूत

इने-गिने राठौर, शाही राजधानी में से चीरते फाड़ते निकल गये। हां, तो कल का प्रबंध तो सब कर ही लिया गया। अब सब लोगों को बुलाइये। उन्हों ने कुछ लिखा है।

(कविराज, चारण, भाट आदि के साथ बचे हुए सामन्त, सैनिक आदि सब लोगों का प्रवेश, मंत्रणा-स्थान सभास्थान बन जाता है।)

दुर्गादास--कविराज जी, आप कुछ ऐसी चीज सुनाइए कि एक एक रोआं भयंकर भैरव का रूप धारण कर ले।

कविराज—हां, महाराज सुनिये—

सब—'रण बंका राठौर' की जय।

हम शंकर के गण प्रलयंकर।

सर्व नाश का मिला इशारा। अब चमकेगी असि की धारा।
हमें न अपना जीवन प्यारा। जन्म भूमि पर तन-मन वारा॥
खेलेंगे हम खेल भयंकर। हम शंकर के गण प्रलयंकर॥

कविराज—और सुनिये—

खर खड्ग अहा बिजली से चलें, रिपुमुंड से संगरभूमि पटें।
नर-रक्त के गंग-प्रवाह में भी, पग वीरो कभी न हटें न हटें॥
विजया विकराल उठा कर हंसे, हम शत्रु पे टूट पड़ें झपटें।
तन जायं हमारी जहां भृकुटी, रिपु-मुंड के झुंड के झुंड कटें॥

सब—वीर भूमि मारवाड़ की जय।

दृश्य चौथा

स्थान—दिल्ली में राजा रूपसिंह की हवेली ।

समय—दूसरे दिन सायंकाल के चार बजे ।

(एक बड़े हाल में दुर्गादास और सब सामन्त खड़े हैं जो औरंगजेब से निराश हो कर अभी लौट आये हैं ।)

महेश—यह तो हम लोग कल ही ताड़ चुके थे, कि हमारी प्रार्थनाओं का यही फल होगा। तो भी आना अच्छा ही हुआ नहीं तो लोग कहते, कि जोधपुर वाले तो झगड़ा मोल लेने पर तुले बैठे थे ।

रण०—औरंगजेब ने आप लोगों को गिरफ्तार करना चाहा था ?

रघु—हां, हां, चाहा तो उस ने था। मगर गिरफ्तार करना सरल नहीं था। दुर्गादास जी की बांकी भौंओं ने मामला रफ़ा दफ़ा कर दिया। नहीं तो वहां भी कुछ शक्ति खर्च करनी पड़ती।

दुर्गा—प्रबन्ध तो सब ठीक है न ? कल जो कुछ निश्चय किया गया था उसके अनुसार सब काम हो गया ?

रण—जी हां, आप की आज्ञा का एक एक शब्द पालन किया गया है ।

(एक सैनिक का प्रवेश)

सै०—(सलाम करके) सरकार, शाही लश्कर ने हवेली घेर ली है। और उसका अफसर सरदार से मिलना चाहता है।

दुर्गा—सेना की संख्या कितनी है ?

सै०—आनन्ददाता पांच हजार से अधिक ही मालूम पड़ती है। अनुमान है, फिर सच झूठ की राम जाने।

दुर्गा—अच्छा रणछोड़दास जी, आप अपने काम का ख्याल रखियेगा। हम वहां दरवाजे पर ही उन से बातें कर लेते हैं। तुरही की आवाज़ सुनते ही आप अपना काम शुरू कर दीजियेगा। और हां, सिर्फ बड़ी महारानी, मर्दाने वेश में हम लोगों के साथ जोधपुर जाएंगी।

(दुर्गादास के साथ रणछोड़ दास के सामन्त चले जाते हैं। हवेली के मुख्य द्वार पर फौलाद खां और दुर्गादास बातें कर रहे हैं।)

फौ०—यह तो आप लोगों की बच्चों की सी ज़िद है, सेनापति। बादशाह सलामत तो राजकुमार को अपनी हिफाज़त में लेना चाहते हैं। मुझे बादशाह ने हुकम दिया है, कि आप लोगों को एक बार और दोस्ताना तौर पर समझाऊं। इसी लिये मैं आप के पास आया हूँ। आप लोगों को मालूम रहे, कि मैं ने हुजूर के हुक्म के मुताबिक इस हवेली को पांच हज़ार सिपाहियों से घेर लिया है।

दुर्गादास—यह तो कोतवाल साहिब हम पहले ही से जानते थे। हम आप के बादशाह सलामत को बहुत अच्छी तरह, बहुत

पहले ही से समझ चुके थे। हमारे स्वर्गीय महाराज भी बादशाह सलामत को समझ चुके थे, पर जरा देरी से। और समझ कर भी उन्होंने ठीक समय पर ठीक उपाय नहीं किया।

फौलादखाँ—क्यों फिजूल झगड़ा बढ़ाते हैं। हम आप से कई गुना ज्यादा हैं। फिजूल अपनी जान से हाथ धो बैठना भी कोई अकलमन्दी है।

दुर्गा०—कोतवाल साहब इस बात के निर्णय करने का अधिकार हमें और केवल हमें है, कि हम ने जो कुछ किया है, या अब जो कुछ करेंगे वह बुद्धिमानी है या मूर्खता? हम भी झगड़ा बढ़ाना नहीं चाहते। हम केवल अपने राजकुमार, अपने भावी महाराज को अपने साथ, अपने देश ले जाना चाहते हैं। अगर हमारी इसी इच्छा को, इसी काम को, आपके बादशाह सलामत या संसार का कोई भी व्यक्ति मूर्खता या झगड़ा समझे तो समझा करे। इससे हमारा क्या बनता बिगड़ता है?

फौ०—अच्छा अगर आपकी यही मर्जी है, तो यही सही मैं भी अपना फर्ज अदा करने के लिये लाचार हूँ।

(फौलाद खां लौट जाता है। उसके अपनी सेना में पहुँचते ही तीर, गोली की बौछार शुरू होती है। इधर दुर्गादास का एक-सैनिक तुरही बजाता है। एक बड़े जोर की आवाज होती है। चारों ओर धुआं फैल जाता है। आग लग जाती है। आग की लपटें बहुत ऊंची होने के कारण दूर दूर तक दिखाई देती हैं। हवेली दुर्ग बन जाती है और आस पास का मैदान रण-भूमि।)

दुर्गा—वीरो, शाबाश, एक शत्रु भी जीता न बचे।

रघु०—दिखलाये जाओ, वीरो, राठौरी तलवारों के जौहर।

महेश०—वीरो, महाराज स्वर्ग से तुम्हारी वीरता देख कर प्रसन्न हो रहे हैं।

(डेढ़ घंटे के बाद। लगभग साढ़े छः बजे। दुर्गादास और बचे हुए सामन्त तथा सिपाही अपने अपने घोड़ों पर सवार लश्कर को चीर कर निकलने का प्रयत्न करते हैं। फौलादखां वहीं उन्हें रोकने का प्रयत्न करता है। मार काट खूब भयंकर हो जाती है। अंत में उन में से कुछ सैनिक मारे जाते हैं। बाकी सब निकल जाते हैं।)

फौलाद०—अफ़सोस! अफ़सोस!! काफ़िर जिन्दा निकल गया। हमारी सारी बहादुरी बेकार हुई। हमारा खून बहाना फ़िज़ूल गया। अच्छा, मेरे बहादुरो चलो अब हवेली के बचे खुचे सामान पर कब्ज़ा कर लो।

(सिपाही भीतर जाते हैं)

एक सिपाही—(भीतर आकर) जनाब जनाने महल में तो बारूद के धुएं की बू आरही है। औरतों के कटे हुए जिस्म इधर उधर पड़े हैं और जले हुए गोश्त के लोंदे पड़े हैं।

दूसरा सि०—जनाब लूटें क्या? अंगारे, कोयला, राख धूल—इनके सिवाय कुछ भी तो नहीं हैं।

(दृश्य-परिवर्तन। स्थान-दीवान खास। समय—रात के आठ बजे। गुस्से में भरे हुए औरङ्गजेब टहल रहे हैं। समय समय पर बाल नोच रहे हैं। एक कोने में, सुकड़े हुए तबर खाँ और फ़ौलाद खाँ खड़े हैं।)

औरंगजेब—हैरत है, तबर खां, तुम पांच हजार जवानो की मदद से भी, इन मुट्ठी भर राजपूतों को न रोक सके।

तबर खां—जहांपनाह, मुझे तो फौलाद खां पर पूरा भरोसा था। और मैंने इनसे कह भी दिया था, कि जरूरत हो तो मुझे बुला लेना।

फौलाद खां—हुजूर मैं तो हक्का-बक्का रह गया। चारों ओर से मार काट मच गई। इधर संभाला, उधर संभाला। चारों ओर घूमता फिरता रहा। इतने में देखता हूँ, कि बचे खुचे सवार दुर्गा दास के पीछे घोड़ो पर चढ़े हुए, दोनों हाथों से तलवारें चलाते हुए, निकले जा रहे हैं। मैं उसी ओर झपटा। दुर्गादास पर तलवार का वार किया। पर उसका घोड़ा उछला और उसने भाले से मेरा घोड़ा मार डाला। दूसरे ही पल में सबके सब बाहर थे।

औरंगजेब—और जसवंत की रानी और लड़का?

फौलाद खाँ—हममें से किसी ने भी उन्हें नहीं देखा।

औरंगजेब—महल में भी नहीं?

फौलाद खां—नहीं जहां पनाह! वहां तो कुछ नहीं था। सिर्फ राख, कोयला, अङ्गारे, जले हुये गोश्त के लोंदे ही थे।

औरं०—अच्छा हटो मेरे सामने से।

(प्रस्थान)

दृश्य पाँचवां

स्थान—मारवाड़ का एक गाँव।

समय—सायंकल के पाँच बजे।

(मंदिर के चबूतरे पर मुखिया और कुछ गांव वाले बैठे हुक्का पी रहे हैं। इधर उधर की बातें हो रही हैं। कछ दूरी पर कुछ लड़के खेल रहे हैं।)

मुखिया—हाँ तो भाई, इस साल तो फ़सल खूब हुई। गत दो-तीन साल की कसर निकल गई। सब के चेहरों पर आनन्द और सन्तोष छा रहा है।

१ ग्रा० वा०—इस प्रकार दो दो, तीन तीन साल के बाद इतनी फ़सल न हो तो यहाँ फिर बसने का कोई नाम ही क्यों ले?

पुजारी—पर इस बार मालूम होता है, कि नाज का कष्ट हम लोगों को न हुआ, तो और कोई कष्ट होगा?

मुखिया—(आश्चर्य एवं डर से,) क्यों?

पुजारी—क्यों क्या! कल रात मुझे स्वप्न जो दिया है, चामुण्डा माई ने।

२ ग्रा० वा०—हां भाई, पुजारी महाराज के स्वप्न झूठ नहीं होते।

३ ग्रा० वा०—यह तो ठीक, पर आपत्ति या कष्ट आकाश से टपक पड़ेगा। कोई कारण भी तो मालूम हो?

४ ग्रा० वा०—हां जी, आप तो पूरे परमात्मा हैं न ? कि कष्ट हम लोगों पर पड़ने के पहिले आपको कारण बतला दिया करें।

३ ग्रा० वा०—परमात्मा न सही। एक मामूली आदमी तो हूं। और एक मामूली आदमी की ही हैसियत से मैं उस कष्ट का कारण जानना चाहता हूं, अगर वह मुझ पर, मेरे परिवार पर, मेरे संबंधियों पर, मेरे मित्रों पर, मेरे मुहल्ले पर, मेरे ढोर-डंगरों पर, मेरे खेत पर, मेरे देश पर और मेरे देश के राजा पर या उसकी सेना पर पड़ना चाहता है।

५ ग्रा० वा०—बड़े गजब के आदमी हो भाई तुम तो। अच्छा अगर कष्ट अपने पड़ने का कारण न बताए तो ?

३ ग्रा० वा०—तो क्या ? मैं पुजारी जी से पूछूंगा। मैं इन्हीं से अपने प्रश्न का उत्तर मांगूंगा।

४ ग्रा० वा०—अगर पुजारी जी भी उत्तर न दें ?

३ ग्रा० वा०—उत्तर कैसे नहीं देंगे ? देना पड़ेगा। हंसी ठट्ठा है ? नहीं देंगे उत्तर !

५ ग्रा० वा०— अरे पर मानलो, अगर पुजारी जी उत्तर न दें ?

३ ग्रा० वा०—अगर पुजारी जी उत्तर न देंगे, तो मैं

पुजारी जी से लड़ूँगा, झगड़ूँगा। इतना कुहराम मचाऊंगा कि पुजारी जी को उत्तर देना पड़ेगा।

४ ग्रा० बा०—क्यों?

३ ग्रा० बा०—क्यों का मतलब? पुजारी जी अगर उत्तर नहीं देना चाहते, तो उन्होंने उस आनेवाले दुष्ट कष्ट का दूतत्व क्यों किया?

४ ग्रा० बा०—तो क्या तुम क्षत्रिय होकर पुजारीजी पर, एक ब्राह्मण पर, शस्त्र उठाओगे?

३ ग्रा० बा०—शस्त्र क्यों उठाऊंगा? ये जब किसी से झगड़ते हैं, तो शस्त्र उठाते हैं? ये तो जिससे झगड़ते हैं, उसके द्वार पर अन्न-जल त्याग कर जा बैठते हैं। मैं भी यही करूंगा। मेरा यह सिद्धान्त है, कि जैसे को तैसा।

मुखिया—अरे तो बिचारे गरीब भोले ब्राह्मण को कोई कारण न मालूम हो तो कहाँ से बताए? चल हट, झगड़ालू कहीं का।

(कुछ लड़कों का प्रवेश। कोई पतंग उड़ाता है। कोई लंगर लड़ाता है। कोई, पत्थर फेंकता है। कोई धूल उछालता है। एक लड़का शृंगाररस पूर्ण गायन गाता है- ढोला वेगा आजोजी। इसे सुनकर मुखिया लड़के को झिड़क देता है)।

मुखिया—देखो, बेटा अभी धरती में से निकला ही नहीं

और गाने लगा ऐसे वाहियात गाने। अरे तुझे और कोई गाना नहीं आता? उस दिन कविराजजी ने जो गाना सिखाया था, वह किसलिए? खबरदार, अगर फिर कभी यह गाना मैंने सुना, तो जीभ पकड़ के खींच लूंगा।

१ ल०— ना बाबा, जीभ अगर खींच लोगे तो फिर कुछ भी न गा सकूंगा। जीभ खींचने के बदले आंखों में काजल या सुरमा लगा दिया करो, ताकि आपको दूर ही से देख लिया करूं तो फिर अपने आप न गाऊं। और कान भी पकड़ के खींच सकते हैं, ताकि सुनने के छेद मोटे हो जाएं, तो दूर से ही आपकी बोली सुनकर संभल जाया करूंगा।

२ ल०—अरे मुखिया बाबा से मुंहजोरी करता है, या गाता है?

१ ल०—अच्छा तो सुनोः—

सिंह समान गरज कर जिसने, रिपुओं को ललकारा है।
सब ल०-रंगमंच यह बलिवीरों का, मरुधर देश हमारा है॥

१ लड़का- जगमें जब तक पूजन होगा, वीरों के बलिदानों का।
नील गगन तक गुंजित होगा, भैरव-रव मर्दानों का॥
जब चारण, कवि भाट गायेंगे, गान घोर घमसानों का।
निर्निमेष हो दृश्य लखेंगे, जब अतीत उत्थानों का॥

रौंद रौंद रण में रिपुको, पूछेंगे, किसने मारा है !
सब ल०-रंगमंच यह बलिवीरों का, मरुधर देश हमारा है ॥

(चारण,भाट और कविराजजी के साथ कुछ सिपाहियों का आगमन। सब के चेहरों और वस्त्रों पर धूल लगी हुई। चौतरे पर ठहर कर सब अपने वस्त्रों पर से धूल झटकते हैं। धूल झड़ जाने पर उनके वस्त्र रक्तरंजित दिखने लगते हैं)।

मुखिया—आप लोग तो, मालूम होता है, बहुत दूर से, थके मांदे, और लड़भिड़ कर आ रहे हैं।

कवि०—लड़भिड़ कर ! अरे जौहर करके ! लगभग पांच सौ राजपूतों के गरमागरम रक्त से दिल्ली की सड़कों को सींचकर। छोटी रानियों सहित साढ़े चार सौ वीरांगनाओं को हुताशन के समर्पित कर। बादशाह बने हुए, हिन्दू-द्वेषी, औरंगजेब की न जाने कितनी और कैसी मधुर आकांक्षाओं को कुचल कर। लगभग डेढ़ हजार दुश्मनों को कबर में भेज कर। तीन हजार को घायल करके। जौहर की आग में तप कर और तपा कर, हम यहां आ रहे हैं।

सब ग्रा० बा०—'रणबंका राठौर' की जय। महाराज जसवंतसिंह की जय। सेनापति दुर्गादास की जय।

मुखिया—(३रे ग्रा० बा० से) लो सुनोजी, झगड़े का कारण; और झगड़ो अब पुजारीजी से।

२ ग्रा० वा०—अब पुजारीजी से क्यों झगड़ूंगा? मुझे तो कष्ट का कारण मालूम करना था। वह हो गया। पुजारीजी से तो अब आशीर्वाद लूंगा, कि अगर कभी लड़ाई हो तो सबसे अधिक दुश्मन तलवार के घाट उतारूं।

मुखिया—(कविराज से) पर एकाएक जौहर का अवसर कैसे आगया? महाराज और बादशाह का संबंध तो अच्छा हो गया था न?

कविराज—राजनैतिक मित्रता संसार की तरह क्षणभंगुर होती है। और फिर औरंगजेब जैसों से मित्रता! जिसने अपने राज्य-लोभ पर धार्मिकता का पुट चढ़ाकर, बाप को कैद में ही मार डाला। ऐसे व्यक्ति की मित्रता का विश्वास क्या? आज है, कल नहीं। हमारे भाग्य से हमारे साथ सेनापति दुर्गादास थे। यदि वे न होते तो न जाने क्या होता!

मुखिया-सेनापति कहाँ हैं? क्या वे पीछे आ रहे हैं?

कविराज—हैं हैं हैं। अरे वे तो सुबह के पहिले ही इस गांव से निकल गये होंगे।

मुखिया-(आश्चर्य से) और हम लोगों को पता भी नहीं? सुबह मालूम तो ऐसा हुआ था कि कुछ घोड़े दौड़े जा रहे हैं।

१ ग्रा० वा०-मेरे भतीजे ने मुझे कहा था। मैंने समझा डाक ले जाने वाले होंगे।

मुखिया-पर झगड़ा हुआ किस बात पर ?

कविराज-महाराज का देहांत हो गया। यह तो आप लोगों ने सुन ही लिया होगा। हम लोग रानियों को लेकर जोधपुर आ रहे थे। रास्ते में महाराजकुमार उत्पन्न हुए। दिल्ली ठहरना पड़ा। वहां औरंगजेब से महाराजकुमार को महाराज का उत्तराधिकारी स्वीकार करवाना था। औरंगजेब महारानी और राजकुमार को पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा के बहाने वहीं रखना चाहता था। उसने सेनापति से महारानी और राजकुमार को मांगा। दुर्गादास उसकी चाल को समझ गये। बादशाह ने सेनापति और सरदारों को भय दिखाया। बड़ा भारी लालच दिया, पर सेनापति टस से मस न हुए। उन्होंने सूखा टका सा जवाब दिया। लाचार होकर उसने बल प्रयोग किया। हम तो सब पहिले से ही तैयार थे। हमने पहिले से ही सब प्रबंध कर लिया था। बहुत देर तक घमासान हुआ। सारी दिल्ली में हलचल मच गई। मुसलमान लोग 'मारो,' 'काटो,' 'जाने न पाये' की आवाज़ लगा रहे थे। हिंदू लोग 'वाह वाह' की आवाज़ से आकाश गुंजा रहे थे।

मुखिया-तो अब आप लोगों का क्या इरादा है? आप कहां जाएंगे? क्या करेंगे?

कविराज—अब यह तो निश्चित ही है, कि औरंगजेब चुप नहीं बैठेगा। वह बहुत जल-भुन गया है। मारवाड़ पर अवश्य आक्रमण होगा। इस बात का पूरा प्रयत्न किया जायगा, कि जोधपुर की गद्दी पर महाराज अजीतसिंह न बैठकर कोई दूसरा ही बादशाह का पिट्ठू बैठे। फिर चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान। और हम मरते दम तक यही प्रयत्न करेंगे, कि बादशाह की इच्छाओं का अंश भी सफल न हो। ऐसी दशा में युद्ध बरसों तक चलेगा। हम लोग उसी आगामी युद्ध की तैयारी करेंगे। हमें तो अब मारवाड़ के एक-एक गांव में घूमना है। इसलिए आप लोग अपनी सब तरह की तैयारी करलें। न जाने कब कैसा अवसर आ पड़े।

स० प्रा० चा०—हम सब तरह से तैयार रहेंगे। महाराज जसवंतसिंह की जय। महाराज अजितसिंह की जय। सेनापति दुर्गादास की जय। वीरभूमि मारवाड़ की जय।

(सब गाते हैं। कविराज, चारण और भाट आगे गाते चलते हैं।)

कविराज- मुंडमालिनी उग्ररूप में, महामाया हो आ जाना।
सब —मारवाड़ का बच्चा-बच्चा, पहिने केसरिया बाना॥
कविराज-अरिमुंडों से पटे समरभू, नभ गूंजे ललकारों से।
काप उठें रोएं रिपुओं के, मरुभू के जयकारों से॥

भूल जायँ वे चढ़कर आना, भूल जायँ अरमानों को।
याद रखें वे तलवारों की, मारों को अपमानों को ॥
गजयूथों पर मृगराजों से, झपट झूमकर आ जाना।
सब —मारवाड़ का बच्चा-बच्चा, पहिने केसरिया बाना ॥
कवि०—जिनके अश्वों की टापों से, हिया धरा का हिल जावे।
जिनकी केवल खड्ग ज्योतिसे, रिपुका हृदय दहल जावे॥
शाही लश्कर क्या बेचारा, देव और दानव आवे।
रजपूती तलवारों का लोहा उनसे भी टकरावे ॥
मुंडमालिनी मरु कणकण में, तू ही स्वयं समा जाना।
सब — मारवाड़ का बच्चा-बच्चा, पहने केसरिया बाना ॥

(आगे-आगे कविराज, चारण, भाट और उनके पीछे सिपाही, गांव वाले और लड़के गाते हुए जाते हैं, और गांव की सीमा से गांव वाले और लड़के गाते हुए वापिस गांव में आ जाते हैं, और कविराज आदि आगे चले जाते हैं।)

